विज्ञान भैरव तंत्र part 2

तंत्र-सूत्र—विधि—40 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी चौथी विधि:

निर्ध्वनि में जागों।'' स्वामी डयूटर

''किसी भी अक्षर के उच्चारण के आरंभ में और उसके क्रमिक परिष्कार में, निर्ध्वनि में जागों।''

कभी-कभी गुरूओं ने इस विधि का खूब उपयोग किया है। और उनके अपने नए-नए ढंग है। उदाहरण के लिए, अगर तुम किसी झेन गुरु के झोंपड़े पर जाओ तो वह अचानक एक चीख मारेगा और उससे तुम चौंक उठोगे। लेकिन अगर तुम खोजोंगे तो तुम्हें पता चलेगा कि वह तुम्हें महज जगाने के लिए ऐसा कर रहा है। कोई भी आकस्मिक बात जगाती है। वह आकस्मिकता तुम्हारी नींद तोड़ देती है।

सामान्य: हम सोए रहते है। जब तक कुछ गड़बड़ी न हो, हम नींद से नहीं जागते। नींद में ही हम चलते है; नींद में ही हम काम करते है। यही कारण है कि हमे अपने सोए होने का पता नहीं चलता। तुम दफ्तर जाते हो, तुम गाड़ी चलाते हो। तुम लौटकर घर आते हो और अपने बच्चों को दुलार करते हो। तुम अपनी पत्नी से बातचीत करते हो। यह सब करने से तुम सोचते हो कि मैं बिलकुल जागा हुआ हूं। तुम सोचते हो कि मैं सोया-सोया ये काम कैसे कर सकता हूं।

लेकिन क्या तुम जानते हो कि ऐसे लोग है जो नींद में चलते है? क्या तुम्हें नींद में चलने वालों के बारे में कछ खबर है।

नींद में चलने वालों की आंखें खुली होती है। और वे सोए रहते है। और उसी हालत में वे अनेक काम कर गुजरते है। लेकिन दूसरी सुबह उन्हें याद भी नहीं रहता कि नींद में मैंने क्या-क्या किया। वे यहां तक कर सकते है कि दूसरे दिन थाने चले जाएं और रपट दर्ज कराए कि कोई व्यक्ति रात उनके घर आया था और उपद्रव कर रहा था। और बाद में पता चलता है कि यह सारा उपद्रव उन्होंने ही किया था। वे ही रात में सोए-सोए उठ आते है। चलते-फिरते है, काम कर गुजरते है; फिर जाकर बिस्तर में सो जाते है। अगली सुबह उन्हें बिलकुल याद नहीं रहता कि क्या-क्या हुआ। वे नींद में दरवाजे तक खोल लेते है, चाबी से ताले तक खोलते है; वे अनेक काम कर गुजरते है। उनकी आंखें खुली रहती है। और वे नींद में होते है।

किसी गहरे अर्थ में हम सब नींद में चलने वाले है। तुम अपने दफ्तर जा सकते हो। तुम लौट कर आ सकते हो, तुम अनेक काम कर सकते हो। तुम वही-वही बात दोहराते रह सकते हो। तुम अपनी पत्नी को कहोगे कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं; और इस कहने में कुछ मतलब नहीं होगा। शब्द मात्र यांत्रिक होंगे। तुम्हें इसका बोध भी नहीं रहेगा। कि तुम अपनी पत्नी से कहते हो कि मैं तुम्हें प्रेम करता हूं। जाग्रत पुरूष के लिए ये सारा जगत नींद में चलने वालों का जगत है।

यह नींद टूट सकती है। उसके लिए कुछ विधियों का प्रयोग करना होगा।

यह विधि कहती है: ''किसी भी अक्षर के उच्चारण के आरंभ में और उसके क्रमिक परिष्कार में, निर्ध्वनि में जागों।''

किसी ध्वनि, किसी अक्षर के साथ प्रयोग करो। उदाहरण के लिए, ओम के साथ ही प्रयोग करो। उसके आरंभ में ही जागों, जब तुमने ध्वनि निर्मित नहीं की। या जब ध्वनि निर्ध्वनि में प्रवेश करे, तब जागों। ये कैसे करोगे?

किसी मंदिर में चले जाओ। वहां घंटा होगा या घंटी होगी। घंटे को हाथ में ले लो और रुको। पहले पूरी तरह से सजग हो जाओ। ध्वनि होने वाली है और तुम्हें उसका आरंभ नहीं चूकना है। पहले तो समग्ररूपेण सजग हो जाओ—मानो इस पर ही तुम्हारी जिंदगी निर्भर है। ऐसा समझो कि अभी कोई तुम्हारी हत्या करने जा रहा है। और तुम्हें सावधान रहना है। ऐसी सावधान रहो—मानों कि यह तुम्हारी मृत्यु बनने वाली है।

और यदि तुम्हारे मन में कोई विचार चल रहा हो तो अभी रुको; क्योंकि विचार नींद है। विचार के रहे तुम सजग नहीं हो सकते। और जब तुम सजग होते हो तो विचार नहीं रहता है। रुको। जब लगे कि अब मन निर्विचार हो गया, कि अब मन में कोई विचार नहीं है। सब बादल छंट गये है। तब ध्वनि के साथ गति करो।

पहले जब ध्वनि नहीं है। तब उस पर ध्यान दो। और फिर आंखें बंद कर लो। और जब ध्वनि हो, घंटा बजे, तब ध्वनि के साथ गति करो। ध्वनि धीमी से धीमी, सूक्ष्म से सूक्ष्म होती जायेगी और फिर खो जाएगी। इस ध्वनि के साथ यात्रा करो। सजग और सावधान रहो। ध्वनि के साथ उसके अंत तक यात्रा करो। उसके दोनों छोरों को, आरंभ और अंत को देखो।

पहले किसी बाहरी ध्वनि के साथ, घंटा या घंटी के साथ प्रयोग करो। फिर आँख बंद करके भीतर किसी अक्षर का, ओम या किसी अन्या अक्षर का उच्चार करो। उसके साथ वही प्रयोग करो। यह कठिन होगा। इसीलिए हम पहले बाहर की ध्वनि के साथ प्रयोग करते है। जब बाहर करने में सक्षम हो जाओगे तो भीतर करना भी आसान होगा। तब भीतर करो। उस क्षण को प्रतीक्षा करो जब मन खाली हो जाए। और फिर भीतर ध्वनि निर्मित करो। उसे अनुभव करो, उसके साथ गति करो, जब तक वह बिलकुल न खो जाए।

इस प्रयोग को करने में समय लगेगा। कुछ महीने लग जाएंगे कम से कम तीन महीने। तीन महीनों में तुम बहुत ज्यादा सजग हो जाओगे। अधिकाधिक जागरूक हो जाओगे। ध्वनि पूर्व अवस्थ और ध्वनि के बाद की अवस्था का निरीक्षण करना है। कुछ भी नहीं चूकना है। और जब तुम इतने सजग हो जाओ कि ध्वनि के आदि और अंत को देख सको तो इस प्रक्रिया के द्वारा तुम बिलकुल भिन्न व्यक्ति हो जाओगे।

कभी-कभी यह अविश्वसनीय सा लगता है कि ऐसी सरल विधियों से रूपांतरण कैसे हो सकता है। आदमी इतना अशांत है। दुःखी और संतप्त है। और ये विधियां इतनी सरल मालूम देती है। ये विधियां धोखाधड़ी जैसी लगती है। अगर तुम कृष्ण मूर्ति के पास जाओ और उनसे कहो कि यह एक विधि है तो कहेंगे कि यह एक मानसिक धोखाधड़ी है। इसके धोखे में मत पड़ो। इसे भूल जाओ। इसे छोड़ो। देखने पर तो वह ऐसी ही लगती है। धोखे जैसी लगती है। ऐसी सरल विधियों से तुम रूपांतरित कैसे हो सकते हो।

लेकिन तुम्हें पता नहीं है। वे सरल नहीं है। तुम जब उनका प्रयोग करोगे तब पता चलेगा कि वे कितनी कठिन है। मुझसे उनके बारे में सुनकर तुम्हें लगता है कि वे सरल है। अगर मैं तुमसे कहूं कि यह जहर है और उसकी एक बूंद से तुम मर जाओगे। और अगर तुम जहर के बारे में कुछ नहीं जानते हो कि तुम कहोगे; ''आप भी क्या बात करते है? बस, एक बूंद और मेरे सरीखा स्वस्थ और शक्तिशाली आदमी मर जाएगा। अगर तुम्हें जहर के संबंध में कुछ नहीं पता है तो ही तुम ऐसा कह सकते हो। यदि तुम्हें कुछ पता है तो नहीं कह सकते।

यह बहुत सरल मालूम पड़ता है: किसी ध्वनि का उच्चार करो और फिर उसके आरंभ और अंत के प्रति बोधपूर्ण हो जाओ। लेकिन यह बोधपूर्ण होना बहुत कठिन बात है। जब तुम प्रयोग करोगे तब पता चलेगा। कि यह बच्चों का खेल नहीं है। तुम बोधपूर्ण नहीं हो। जब तुम इस विधि को प्रयोग करोगे तो पहली बार तुम्हें पता चलेगा कि मैं आजीवन सोया-सोया रहा हूं अभी तो तुम समझते हो कि मैं जागा हुआ हूं, सजग हूं।

इसका प्रयोग करो, किसी भी छोटी चीज के साथ प्रयोग करो। अपने को कहो कि में लगातार दस श्वासों के प्रति सजग रहूंगा, बोधपूर्ण रहूंगा। और फिर श्वासों की गिनती करो। सिर्फ दस श्वासों की बात है। अपने को कहो कि मैं सजग रहूंगा और एक से दस तक गिनुंगा आती श्वासों को, जाती श्वासों को, दस श्वासों को सजग रहकर गिनुंगा।

तुम चूक-चूक जाओगे। दो या तीन श्वासों के बाद तुम्हारा अवधान और कहीं चला जाएगा। तब तुम्हें अचानक होश आएगा कि मैं चूक गया हूं, मैं श्वासों को गिनना भूल गया। या अगर गिन भी लोगे तो दस तक गिनने के बाद पता चलेगा कि मैंने बेहोशी में गिनी, मैं जागरूक नहीं रहा।

सजगता अत्यंत कठिन बात है। ऐसा मत सोचो कि ये उपाय सरल है विधि जो भी हो। सजगता साधनी है। उसे बोध पूर्वक करना है। बाकी चीजें सिर्फ सहयोगी है। और तुम अपनी विधियां स्वयं भी निर्मित कर सकते हो। लेकिन एक चीज सदा याद रखने जैसी है कि सजगता बनी रहे। नींद में तुम कुछ भी कर सकते हो; उसमे कोई समस्या नहीं है। समस्या तो तब खड़ी होती है जब यह शर्त लगायी जाती है कि इसे होश से करो, बोध पूर्वक करो।

(इस ध्यान को अति सुंदर और विकसित कर ओशो ने कुंडलिनी ध्यान बनाया है। उसमें दो चरण ओशो ने और जोड़ दिये, पहले तो उर्जा को जगाओं, और फिर नृत्य कर उर्जा का प्रफुलित कर के फैलने दो, केवल आनंदित उर्जा का एक पुंज आपको घेरे रहे। तब तुम अति ऊर्जा से लबरेज हो, फिर सुनो संगीत को....ओर वह भी छम-छम अविरल बहते संगीत को आदि से अंत से अनेक......वाद्य की ध्वनियों के साथ ''स्वामी दूतर'' द्वारा तैयार किया संगीत)

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—41 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी पाँचवीं विधि:

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रित ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।
वही चीज।

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रीय ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।''

तुम किसी वाद्य को सुन रहे हो—सितार या किसी अनय वाद्य को। उसमें कई स्वर है। सजग होकर उसके केंद्रीय स्वर को सुनो। उस स्वर को जो उसका केंद्र हो और उसके चारों और सभी स्वर घूमते हों; उसकी आंतरिक धारा को सुनो, जो अन्य सभी स्वरों को सम्हाले हुए हो। जैसे तुम्हारे समूचे शरीर को उसका मेरुदंड, उसकी रीढ़ सम्हाले हुए है। वैसे ही संगीत की भी रीढ़ होती है। संगीत को सुनते हुए सजग होकर उसमे प्रवेश करो और उसके मेरुदंड को खोजों—उस केंद्रीय स्वर को खोजों जो पूरे संगीत को सम्हाले हुए है। स्वर तो आते जाते रहते है। लेकिन केंद्रीय तत्व प्रवाहमान रहता है। उसके प्रति जागरूक होओ।
बुनियादी रूप से मूलत: संगीत का उपयोग ध्यान के लिए किया जाता था। भारतीय संगीत का विकास तो विशेष रूप से ध्यान की विधि के रूप में ही हुआ था। वैसे ही भारतीय नृत्य का विकास भी ध्यान विधि के लिए के लिए तैयार किया गया था। संगीतज्ञ या नर्तक के लिए ही नहीं श्रोता या दर्शक के लिए भी वे गहरे ध्यान के उपाय थे।

नर्तक या संगीतज्ञ मात्र टेक्नीशियन भी हो सकता है। अगर उसके नृत्य या संगीत में ध्यान नहीं है तो वह टेक्नीशियन ही है। वह बड़ा टेक्नीशियन हो सकता है। लेकिन तब उसने संगीत में आत्मा नहीं है, शरीर भर है। आत्मा तो तब होती है जब संगीतज्ञ गहरा ध्यानी हो। संगीत तो बाहरी चीज है। सितार बजाते हुए वादक सितार ही नहीं बजाता है, वह भीतर अपने बोध को भी जगाता है। बाहर सितार बजता है और भीतर उसका गहन बोध गति करता है। बहार संगीत बहता रहता है; लेकिन संगीतज्ञ अपने अंतरस्थ केंद्र पर सदा सजग बोधपूर्ण बना रहता है। वही बोध समाधि बन जाता है। वही शिखर बन जाता है।

कहते है कि संगीतज्ञ जब सचमुच संगीतज्ञ हो जाता है तो वह अपना वाद्य तोड़ देता है। वह अब उसके काम का न रहा है। और अगर उसे अब भी वाद्य की जरूरत पड़ती है तो वह अभी संगीतज्ञ नहीं हुआ है। वह अभी सिक्खड़ ही है। सीख रहा है। अगर तुम ध्यान के साथ संगीत का अभ्यास करते हो, उसे ध्यान बनाते हो तो देर-अबेर आंतरिक संगीत ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाएगा। और बाहरी संगीत ने सिर्फ कम महत्वपूर्ण रहेगा, बल्कि अंतत: वह बाधा बन जाएगा। तुम सितार को उठाकर फेंक दोगे। तुम वाद्य को अलग रख दोगे। क्योंकि अब तुम्हें तुम्हारा आंतरिक वाद्य मिल गया है। लेकिन वह बहारी वाद्य के बिना नहीं मिल सकता। बहारी वाद्य के साथ आसानी से सजग हुआ जा सकता है। लेकिन जब सजगता सध जाए तो तुम बाहर को छोड़ो और भीतर गति कर जाओ। यही बात श्रोता के लिए भी सही है।

लेकिन जब तुम संगीत सुनते हो, तो क्या करते हो? तुम ध्यान नहीं करते हो; उलटे तुम संगीत का शराब की तरह उपयोग करते हो। तुम विश्राम के लिए उसका उपयोग करते हो। यही दुर्भाग्य है। यही पीड़ा है। जो विधियां जागरूकता के लिए विकसित की गई थी उनका उपयोग नींद के लिए किया जा रहा है। और ऐसे ही आदमी अपने को धोखा दिये जा रहा है। अगर तुम्हें कोई चीज जागने के लिए दि जा रही है।

यही कारण है कि सदियों-सदियों तक सदगुरूओं के उपदेशों को गुप्त रखा गया। क्योंकि सोचा गया कि सोए हुए व्यक्ति को विधियां बताना व्यर्थ है। वह उसे सोने के ही काम लगाएगा; अन्यथा वह नहीं कर सकता। इसलिए पात्रों को ही विधियां दी जाती थी। ऐसे विशेष शिष्यों को ही उनका प्रयोग बताया जाता था जो अपनी नींद को छोड़ने को राज़ी है। जो अपनी नींद से जागने के लिए तैयार है।

ओस्पेंस्की ने अपनी एक पुस्तक जार्ज गुरजिएफ को यह कहकर समर्पित की है कि ''इस व्यक्ति ने मेरी नींद तोड़ी है।''

ऐसे लोग उपद्रवी होते है। गुरजिएफ, बुद्ध या जीसस जैसे लोग उपद्रवी ही होंगे। यही कारण है कि हम उनसे बदला लेते है। जो हमारी नींद में बाधा डालता है। उसे हम सूली पर चढ़ा देते है। वह हमें नहीं भाता है। हम सुंदर सपने देख रहे थे और वह आकर हमारी नींद में बाधा डालता है। तुम उसकी हत्या कर देना चाहते हो। स्वप्न इतना मधुर था।

स्वप्न मधुर हो चाहे न हो, लेकिन एक बात निश्चित है कि वह स्वप्न है और व्यर्थ है, बेकार है। और स्वप्न अगर सुंदर है तो ज्यादा खतरनाक है; क्योंकि उसमें आकर्षण अधिक होगा। वह नशे का काम कर सकता है।

हम संगीत का, नृत्य का उपयोग नशे के रूप कर रहे है। और अगर तुम संगीत और नृत्य का उपयोग नशे की तरह कर रहे हो तो वे तुम्हारी नींद के लिए ही नहीं, तुम्हारी कामुकता के लिए भी नशे का काम देंगे। और यह स्मरण रहे कि कामुकता और नींद संगी-साथी है। जो जितना सोया-सोया होगा, वह उतना ही कामुक होगा। जो जितना जागा हुआ होगा, वह उतना ही कम कामुक होगा। कामुकता की जड़ नींद में है। जब तुम जागोगे तो ज्यादा प्रेमपूर्ण होओगे; कामवासना की पूरी ऊर्जा प्रेम में रूपांतरित हो जाती है।

यह सूत्र कहता है: ''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रीय ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।''

और तब तुम उसे जान लोगे जो जानना है, जो जानने योग्य है। तब तुम सर्वव्यापक हो जाओगे। उस संगीत के साथ, उसके केंद्रीय तत्व को प्राप्त कर तुम जाग जाओगे। और उसे जागरूकता के साथ तुम सर्वव्यापी हो जाओगे।

अभी तो तुम कहीं एक जगह हो; उस बिंदु को हम अहंकार कहते है। अभी तुम उसी बिंदु पर हो। अगर तुम जाग जाओगे तो यह बिंदु विलीन हो जायेगा। तब तुम कहीं एक जगह नहीं होगे, सब जगह होगे। सर्वव्यापी हो जाओगे। तब तुम सर्व ही हो जाओगे। तुम सागर हो जाओगे, तुम अनंत हो जाओगे।

मन सीमा है; ध्यान से अनंत में प्रवेश है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—42 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी छठवीं विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि—42 (ओशो)
किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो कि वह सुनाई दे;

''किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो कि वह सुनाई दे; फिर उस उच्चार को मंद से मंदतर किए जाओ—जैसे-जैसे भाव मौन लयबद्धता में लीन होता जाए।''

कोई भी ध्वनि काम देगी; लेकिन अगर तुम्हारी कोई प्रिय ध्वनि हो तो वह बेहतर होगी। क्योंकि तुम्हारी प्रिय ध्वनि मात्र ध्वनि नहीं रहती; जब तुम उसका उच्चार करते हो तो उसके साथ एक अप्रकट भाव भी उठता है। और फिर धीरे-धीरे वह ध्वनि तो विलीन हो जाएगी और भाव भर रह जाएगा।

ध्वनि को भाव की तरह से जाने वाले मार्ग की तरह उपयोग करना चाहिए। ध्वनि मन है और भाव हृदय है। मन को हृदय से मिलने के लिए मार्ग चाहिए। हृदय में सीधा प्रवेश कठिन है। हम हृदय को इतना भुला दिए है। हम हृदय के बिना इतने जन्मों से रहते आए है कि हमें पता ही नहीं रहा कि कहां से उसमे प्रवेश करें। द्वार बंद मालूम पड़ता है। हम हृदय की बात बहुत करते है। लेकिन वह बातचीत भी मन की ही है। हम कहते है कि हम हृदय से प्रेम करते है। लेकिन हमारा प्रेम भी मानसिक है। मस्तिष्क गत है। हमारा प्रेम भी बौद्धिक प्रेम है। हृदय की बात भी मस्तिष्क में घटित होती है। हमें पता ही नहीं रहा है कि हृदय कहां है।

हृदय से मेरा अभिप्राय शारीरिक हृदय से नहीं है। उसे तो हम जानते है। लेकिन शरीर शास्त्री और वैद्य-डाक्टर कहेंगे कि उस हृदय में प्रेम की संभावना नहीं है; वह तो केवल पंप का काम करता है, फुफ्फुस का काम करता है। उसमे और कुछ नहीं है। और बातें बस कपोलकल्पना है, कविता है, स्वप्न है।

लेकिन तंत्र जानता है कि तुम्हारे शारीरिक हृदय के पीछे ही एक गहरा केंद्र छिपा है। उस गहरे केंद्र तक मन के द्वारा ही पहुंचा जा सकता है। क्योंकि हम मन में है। हम अपने मन में है और अंतस की और कोई भी यात्रा वहीं से आरंभ हो सकती है।

मन ध्वनि है। आवाज है। अगर सब ध्वनि बंद हो जाए तो तुम्हारा मन नहीं रहेगा। मौन में मन नहीं है। यही कारण है कि मौन पर इतना बल दिया जाता है। मौन अ-मन अवस्था है। आमतौर से हम कहते है कि मेरा मन शांत हो रहा है। यह बात ही बेतुकी है। अर्थहीन है। क्योंकि मन का अर्थ है मौन की अनुपस्थिति। तुम यह नहीं कह सकते कि मन शांत है। मन है तो शांत नहीं हो सकता और शांति है तो मन नहीं हो सकता। शांत मन नाम की कोई चीज नहीं होती। हो नहीं सकती। यह ऐसा ही है जैसे कि तुम कहो कि कोई व्यक्ति जीवित मृत है। उसका कोई अर्थ नहीं है। अगर वह मृत है तो वह जीवित नहीं हो सकता।

और अगर वह जीवित है तो मृत नहीं हो सकता। सच तो यह है कि मन जब विदा होता है तो शांति आती है। या कहो कि शांति आती है तो मन विदा हो जाता है। दोनों एक साथ नहीं हो सकते।

मन ध्वनि है। अगर यह ध्वनि व्यवस्थित है तो तुम स्वस्थ चित हो। और अगर वह अराजक हो तो तुम विक्षिप्त कहलाओगे। लेकिन दोनों हालत में ध्वनि है। आवाज है। और हम मन के तल पर रहते है। उस तल से ह्रदय के आंतरिक तल पर कैसे उतरा जाए?
ध्वनि का उपयोग करो। ध्वनि का उच्चार करो। किसी एक ध्वनि का उच्चार उपयोगी होगा। अगर मन में अनेक ध्वनियां है तो उन्हें छोड़ना कठिन होगा। और अगर एक ही ध्वनि हो तो उसे सरलता से छोड़ा जा सकता है। इसलिए पहले एक ध्वनि के लिए अनेक का त्याग करना होगा। एकाग्रता का यही उपयोग है।

इसलिए अच्छा हो कि कोई ध्वनि, कोई नाम, कोई मंत्र लो, जो तुम्हें प्रीतिकर हो, जिससे तुम्हारा भाव जुड़ा हो। अगर कोई हिंदू राम शब्द का उपयोग करता है तो उसके साथ उसका भाव जुड़ा होगा। यह उसके लिए मात्र शब्द नहीं रहेगा। यह उसकी बुद्धि तक ही सीमित नहीं रहेगा; इसकी तरंगें उसके ह्रदय तक चली जाएंगी उसको भला इसका पता न हो; लेकिन यह ध्वनि उसके रक्त में समाई है। उसकी मांस मज्जा में सम्माहित है। उसके पीछे लंबी परंपरा है। गहरे संस्कार है; उसके पीछे जन्मों-जन्मों के संस्कार है। जिस ध्वनि के साथ तुम्हारा लंबा लगाव बन जाता है। वह तुममें गहरी जड़ें जमा लेती है। इसका उपयोग करो। उसका उपयोग किया जा सकता है।

यही कारण है कि दुनिया के दो सबसे पुराने धर्म—हिंदू और यहूदी—धर्म परिवर्तन में कभी विश्वास नहीं करते। वे सबसे प्राचीन धर्म है, आदि धर्म है; और सारे धर्म उनकी ही शाखा प्रशाखा है। ईसाइयत और इसलाम यहूदी परंपरा की शाखाएं है। और बौद्ध, जैन और सिक्ख धर्म हिंदू धर्म की शाखाएं है। और ये दोनों आदि धर्म धर्म-परिवर्तन को नहीं मानती।

अगर तुम्हें किसी ध्वनि से प्रेम नहीं है तो अपना नाम ही उपयोग करो। लेकिन यह भी बहुत कठिन है। कारण यह है कि तुम अपने प्रति इतनी निंदा से भरे हो कि तुम्हें अपने प्रति कोई भाव नहीं है। कोई आदर नहीं है। दूसरे भले तुम्हारा आदर करते हों; लेकिन तुम खुद अपना आदर नहीं करते हो।

तो पहले बात है कि कोई उपयोगी ध्वनि खोजों। उदाहरण के लिए, अपने प्रेमी या अपनी प्रेमिका का नाम भी चलेगा। अगर तुम्हें फूल से प्रेम है तो गुलाब शब्द काम दे देगा। कोई भी ध्वनि जो तुम्हें भाती है। जिसे सुनकर तुम स्वस्थ अनुभव करते हो। उसका उपयोग कर लो। और अगर तुम्हें ऐसा कोई शब्द न मिले तो परंपरागत स्रोतों से जो कुछ शब्द उपल्बध है उनका उपयोग कर सकते हो। ओम का उपयोग करो। आमीन का उपयोग करो। मरिया भी चलेगा। राम भी चलेगा। बुद्ध भी चलेगा। महावीर का नाम भी काम में लाया जा सकता है। कोई भी नाम जिसके लिए तुम्हें भाव हो, चलेगा। लेकिन भाव होना जरूरी है। इसीलिए गुरु का नाम सहयोगी हो सकता है। लेकिन भाव चाहिए। भाव अनिवार्य है।

‘’किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो, कि वह सुनाई दे; फिर उस उच्चार को मंद से मंदतर किए जाओ—जैसे-जैसे भाव मौन लयबद्धता में लीन होता जाए।‘’

ध्वनि को निरंतर घटाते जाओ। उच्चार को इतना धीमा करो कि तुम्हें भी उसे सुनने के लिए प्रयत्न कना पड़े। ध्वनि को कम करते जाओ, और तुम्हें फर्क मालूम होगा। ध्वनि जितनी धीमी होगी, तुम उतने ही भाव से भरोंगे। और जब ध्वनि विलीन होती है तो भाव ही शेष रहता है। इस भाव को नाम नहीं दिया जा सकता वह प्रेम है, प्रगाढ़ प्रेम है। लेकिन यह प्रेम किसी व्यक्ति विशेष के प्रति नहीं है। यही फर्क है।

जब तुम कोई ध्वनि या शब्द उपयोग करते हो तो उसके साथ प्रेम जुड़ा रहता है। तुम राम-राम करते हो तो इस शब्द के प्रति तुम्हारे भीतर बड़ा गहरा भाव है। लेकिन यह भाव राम के प्रति निवेदित है, राम पर सीमित है। लेकिन जब तुम राम ध्वनि को मंद से मंदतर करते जाते हो तो एक क्षण आयेगा। जब राम विदा हो जाएगा। ध्वनि विदा हो जाएगी और सिर्फ भाव शेष रहेगा। यह प्रेम का भाव है जो राम के प्रति नहीं है। यह किसी के भी प्रति नहीं है। केवल प्रेम का भाव है—मानो तुम प्रेम के सागर हो।

प्रेम जब किसी के प्रति निवेदित नहीं होता तो वह ह्रदय का प्रेम होता है। और जब वह निवेदित प्रेम होता है तो वह मस्तिष्क का होता है। जो प्रेम किसी के प्रति है, वह मस्तिष्क से घटित होता है। और केवल प्रेम मात्र प्रेम ह्रदय को होता है। और यह केवल प्रेम अनिवेदित प्रेम ही प्रार्थना बनता है। अगर वह किसी के प्रति निवेदित है तो वह प्रार्थना नहीं बन सकता; तब तुम अभी रहा पर ही हो।

इसीलिए मैं कहता हूं कि अगर तुम ईसाई हो तो तुम हिंदू की भांति नहीं आरंभ कर सकते; तुम्हें ईसाई की भांति आरंभ करना चाहिए। अगर तुम मुसलमान हो तो तुम ईसाई की तरह शुरू नहीं कर सकते। तुम्हें मुसलमान की तरह ही शुरू करना चाहिए। लेकिन तुम जितने गहरे जाओगे उतने ही कम मुसलमान या ईसाई या हिंदू रहोगे। सिर्फ आरंभ हिंदू मुसलमान या ईसाई की तरह से होगा।

तुम जितना ही ह्रदय की तरफ गति करोगे—ध्वनि जिनी कम होगी और भाव जितना बढ़ेगा—तुम उतने ही कम हिंदू या मुसलमान रह जाओगे। और जब ध्वनि विलीन हो जाएगी तो तुम केवल मनुष्य होगे...न हिंदू। न मुसलमान। न ईसाई।

संप्रदाय या धर्म का यही फर्क है। धर्म एक है; संप्रदाय अनेक है। संप्रदाय शुरू करने में सहयोगी है। लेकिन तुम अगर सोचते हो कि संप्रदाय अंत है, मंजिल है, तो तुम कही के नहीं रहोगे। वे आरंभ भर है। तुम्हें उनके पार जाना होगा; क्योंकि आरंभ अंत नहीं है। अंत में धर्म है; आरंभ में संप्रदाय है। संप्रदाय का उपयोग धर्म के लिए करो। सीमित का उपयोग असीम के लिए करो; क्षुद्र का उपयोग विराट के लिए करो।

यदि तुम किसी हिंदू मंदिर में गये हो तो वहां तुमने गर्भ-गृह का नाम सुना होगा। मंदिर के अंतरस्थ भाग को गर्भ कहते है। शायद तुमने ध्यान न दिया हो कि उसे गर्भ क्यों कहते है। अगर तुम मंदिर की ध्वनि का उच्चार करोगे—हरेक मंदिर की अपनी ध्वनि है, अपना मंत्र है। अपना इष्ट देवता है। और इस इष्ट देवता से संबंधित मंत्र है। अगर उस ध्वनि का उच्चार करोगे तो पाओगे कि उससे वहां वही उष्णता पैदा होती है जो मां के गर्भ में पाई जाती है। यही कारण है कि मंदिर के गर्भ जैसा गोल और बंद, करीब-करीब बंद बनाया जाता है। उसमे एक ही छोटा सा द्वारा रहता है।

जब ईसाई पहली बार भारत आये और उन्होंने हिंदू मंदिरों को देखा तो उन्हें लगा कि ये मंदिर तो बहुत अस्वास्थ्यकर कर है। उनमें खिड़की नहीं है। सिर्फ एक छोटा सा दरवाजा है। लेकिन मां के गर्भ में भी तो एक ही द्वार होता है। और उसमे भी हवा के आने-जाने की व्यवस्था नहीं रहती। यही वजह है कि मंदिर को ठीक मां के पेट जैसा बनाया जाता है। उसमे एक ही दरवाजा रखा जाता है। अगर तुम उसकी ध्वनि का उच्चार करते हो तो गर्भ सजीव हो उठता है। और इसे इसलिए भी गर्भ कहा जाता है। क्योंकि वहां तुम नया जन्म ग्रहण कर सकते हो। तुम नया मनुष्य बन सकते हो।

यही कारण है कि मंदिरों में अन्य धर्मों के लोगों को प्रवेश नहीं मिलता। अगर कोई मुसलमान नहीं है तो उसे मक्का में प्रवेश नहीं मिल सकता है। और यह ठीक है। इसमे कोई भूल नहीं है। इसका कारण यह है कि मक्का एक विशेष विज्ञान का स्थान है। जो व्यक्ति मुसलमान नहीं है वह वहां ऐसी तरंग लेकिर जाएगा जो पूरे वातावरण के लिए उपद्रव हो सकती है। अगर किसी मुसलमान को हिंदू मंदिर में प्रवेश नहीं मिलता है तो यह अपमानजनक नहीं है। जो सुधारक है, वह मंदिरों के विषय में कुछ नहीं जानते। धर्म एक गुह्म विज्ञान है। वे केवल उपद्रव पैदा करते है।

हिंदू मंदिर केवल हिंदुओं के लिए है। क्योंकि हिंदू मंदिर एक विशेष स्थान है, विशेष उदेश्य से निर्मित हुआ है। सदियों-सदियों से वे इस प्रयत्न में लगे है। कि कैसे जीवंत मंदिर बनाएँ जाएं। और कोई भी व्यक्ति उसमे उपद्रव पैदा कर सकता है। और यह उपद्रव खतरनाक है। सिद्ध हो सकता है। मंदिर कोई सार्वजनिक स्थान नहीं है। वहाँ एक विशेष उदेश्य से और विशेष लोगों के लिए बनाया गया है। वह आम दर्शकों के लिए नहीं है।

यही कारण है कि पुराने दिनों में आम दर्शकों को वहां प्रवेश नहीं मिलता था। अब सब को जाने दिया जाता है; क्योंकि हम नहीं जानते है कि हम क्या कर रहे है। दर्शकों को नहीं जाने दिया जाना चाहिए। यह कोई खेल तमाशे का स्थान नहीं है। यह स्थान विशेष तरंगों से तरंगायित है, विशेष उदेश्य के लिए निर्मित हुआ है।

इसलिए एक स्थान का उपयोग करो—स्थान के रूप में मंदिर अच्छा है। ये विधियां मंदिर के लिए है। मंदिर अच्छा है; मस्जिद अच्छी है। चर्च अच्छा है। तुम्हारा अपना धर इन विधियों के लिए उपयुक्त नहीं है। वहां इतना कोलाहल है कि वह अराजकता का स्थान बन गया है। और तुम इतने बलवान नहीं हो कि अपनी ध्वनि से उस वातावरण को बदल सको। तो अच्छा है कि किसी ऐसी जगह चले जाओ। जो किसी विशेष ध्वनि के लिए बना हो। ऐसे स्थान का उपयोग करो। और अच्छा है कि रोज-रोज एक ही स्थान को काम में लाओ।

धीरे-धीरे तुम शक्ति शाली हो जाओगे। और धीरे-धीरे मन से ह्रदय में उतर जाओगे। तब तुम कही भी यह प्रयोग कर सकते हो। तब सारा ब्रह्मांड तुम्हारा मंदिर बन जाएगा। तब समस्या नहीं रहेगी।

लेकिन आरंभ में स्थान का चुनाव जरूरी है। और अगर समय का, निश्चित समय का चुनाव कर सको तो यह और अच्छा। क्योंकि तब वह मंदिर उस निश्चित समय पर तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा। रोज ठीक उसी समय पर मंदिर तुम्हारा इंतजार करेगा। उस वक्त वह ज्यादा खुला होगा। उसे प्रसन्नता होगी कि तुम आ गए। वह सारा स्थान प्रसन्न होगा। और मैं ये बात प्रतीक के अर्थ में नहीं कह रहा हूं, यह एक सच्चाई है।

यह ऐसा है कि जैसे तुम किसी निश्चित समय पर भोजन लेते हो और रोज ठीक उसी समय पर तुम्हारा शरीर भूख अनुभव करने लगता है। शरीर की अपनी अलग आंतरिक घड़ी है। शरीर अपने ठीक समय पर भूख प्यास अनुभव करता है। अगर तुम प्रतिदिन एक विशेष समय पर सोते हो तो तुम्हारा पूरा शरीर उस समय सोने के लिए तैयार हो जाता है। और अगर तुम रोज-रोज अपने खाने और सोन का समय बदलते रहते हो तुम अपने शरीर को उपद्रव में डाल रहे हो।

अब तो वे कहते है कि ऐसे परिवर्तन से तुम्हारी आयु प्रभावित हो सकती है। अगर तुम रोज-रोज अपने शरीर की चर्या को, रूटीन को बदलते हो तो संभव है कि तुम्हारी उम्र कम हो जाए। यदि तुम अस्सी साल जीने वाले थे तो इस सतत परिवर्तन के कारण तुम सत्तर साल ही जीओगे। तुम दस साल गंवा दोगे। और अगर तुम शरीर की घड़ी के अनुसार अपनी चर्या चलाते हो तो तुम आसानी से अस्सी साल की बजाएं नब्बे साल वर्षो तक जीवित रह सकत हो। दस वर्ष जोड़े जा सकते है।

ठीक इसी तरह तुम्हारे चारों तरफ हर चीज की अपनी घड़ी है और सारा संसार जागतिक समय में गति करता है। अगर तुम प्रतिदिन निश्चित समय पर मंदिर में प्रवेश करते हो तो मंदिर तुम्हारे लिए तैयार होता है। और तुम मंदिर के लिए तैयार होते हो। ये दो तैयारियाँ आपस में मिलती है। और उसका फल हजार गुना हो जाता है।

यह तुम अपने घर में एक छोटा सा कोना इसके लिए सुरक्षित कर ले सकते हो। लेकिन तब उस स्थान को किसी और काम के लिए उपयोग मत करो। क्योंकि हर काम की अपनी तरंगें है। अगर तुम उस स्थान को व्यवसाय के काम में लाते हो, वहां ताश खेलते हो, तो वह स्थान कनफ्यूज्ड हो जाएगा। अब तो इन कनफ्यूज्ड को रेकार्ड करने के यंत्र है; जाना जा सकता है कि स्थान कनफ्यूज्ड है।

अगर तुम अपने घर में एक छोटा सा कोना इसके लिए अलग कर लो तो अच्छा । घर में एक छोटा सा मंदिर ही बना लो; बहुत अच्छा रहेगा। अगर तुम एक छोटा मंदिर बना सको तो सर्वोतम है। लेकिन फिर उसे किसी दूसरे काम में मत लाओ। उसे अपना निजी मंदिर रहने दो। और शीध्र ही परिणाम आने लगेंगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—43 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी सातवीं विधि:

स्वामी आनंद प्रसाद "मनसा"

''मुंह को थोड़ा-सा खुला रखते हुए मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।''

मन को शरीर में कहीं भी स्थिर किया जा सकता है। सामान्यत: हमने उसे सिर में स्थिर कर रखा है; लेकिन उसे कहीं भी स्थिर किया जा सकता है। और स्थिर करने के स्थान के बदलने से तुम्हारी गुणवता बदल जाती है। उदाहरण के लिए, पूर्व के कई देशों में, जापान, चीन, कोरिया आदि में परंपरा से सिखाया जाता है कि मन पेट में है। सि में नहीं है। और इस करण उन लोगों के मन के गुण बदल जाते है। जो सोचते है कि मन पेट में है। जो लोग सोचते है कि मन सिर में है। उनके ये गुण नहीं हो सकते।

असल में मन कहीं भी नहीं है। सिर में है मस्तिष्क; मन का अर्थ है एकाग्रता; तुम मन को कही भी स्थिर कर सकते हो। और जहां उसे एक बार स्थिर कर दोगे वहां से उसे हटाना कठिन होगा। उदाहरण के लिए, अब मनोवैज्ञानिक और मनुष्य के गहरे में शोध करने वाले लोग कहते है कि जब तुम संभोग कर रहे हो तो तुम्हारा मन सिर से उतर कर कामेंद्रित पर चला जाता है। अन्यथा तुम्हारी काम-क्रिया बेकार जाएगी। अगर मन सिर में ही रहे तो तुम काम-भोग में गहरे नहीं उतर पाओगे। तब

काम-समाधि नहीं घटित होगी और तुम्हें आर्गाज्म का अनुभव नहीं होगा। तब तुम्हें उसका शिखर नहीं प्राप्त होगा। तुम बच्चे पैदा कर सकेत हो; लेकिन तुम्हें प्रेम के शिखर का कोई अनुभव नहीं होगा।
तुम्हें उसकी कोई समझ नहीं है। जिसकी तंत्र चर्चा करता है या जिसे खजुराहो चित्रित करता है। तुम नहीं समझ सकते। क्या तुमने खजुराहो देखा है, अगर तुम खजुराहो नहीं गए हो तो तुमने खजुराहो के मंदिरों के चित्र अवश्य देखे होंगे। उनके चेहरों को ध्यान से देखो; संभोग रत जोड़ों को देखो, उनके चेहरो को देखो। वे चेहरे दिव्य मालूम पड़ते है। वे काम-भोग में संलग्न है; लेकिन उनके चेहरों में बुद्ध की समाधि झलकती है। उन्हें क्या हो गया है?

उनका काम भोग मानसिक नहीं है। वे बुद्धि से संभोग नहीं करते है; वे उसके संबंध में विचार नहीं करते है। वे बुद्धि से नीचे उतर आए है; उनका फोकस बदल गया है; और सिर से हट जाने के कारण उनकी चेतना कर्मेंद्रिय पर उतर आई है। अब मन नहीं है। अब मन अ-मन हो गया है। इसीलिए उनके चेहरों पर बुद्ध की समाधि झलकती है। उनका काम-भोग ध्यान बन गया है।

क्यों फोकस बदल गया। अगर तुम अपने मन के फोकस को बदल देते हो, अगर तुम उसे सिर से हटा लेते हो। तो सिर विश्राम में होता है। चेहरा विश्राम में होता है। तब सभी तनाव विलीन हो जाते है। तब तुम नहीं हो, तब अहंकार नहीं है।

यही कारण है कि चित जितना बौद्धिक होता है, बुद्धिवादी होता है, उतना ही वह प्रेम करने में असमर्थ हो जाता है। प्रेम के लिए भिन्न फोकसिंग की जरूरत है। प्रेम में तुम्हारा फोकस हृदय के पास होने की जरूरत है; संभोग में तुम्हारा फोकस काम केंद्र के पास होने की जरूरत है। जब तुम गणित करते हो तो सिर उसके लिए उचित जगह है। लेकिन प्रेम गणित नहीं है; संभोग बिलकुल गणित नहीं है। और अगर सिर में गणित से भरे होकर तुम संभोग में उतरते हो तो तुम अपनी ऊर्जा नष्ट करते हो। तब सारा श्रम बेचैनी पैदा करेगा।

लेकिन मन को बदला जा सकता है। तंत्र कहता है कि शरीर में सात चक्र है और मन को उनमें से किसी भी चक्र पर स्थिर किया जा सकता है। प्रत्येक चक्र का अलग गुण है। और अगर तुम एक विशेष चक्र पर एकाग्र करोगे तो तुम भिन्न ही व्यक्ति हो जाओगे।

जापान में एक सैनिक समुदाय हुआ है, जो भारत के क्षत्रियों जैसा है। उन्हें समुराई कहते है, उन्हें सैनिक के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है। और उन्हें पहली सीख यह दी जाती है कि तुम अपने मन को सिर से उतार कर नाभि-केंद्र के ठीक दो इंच नीचे ले आओ। जापान में इस केंद्र को हारा कहते हे। समुराई को मन को हारा पर लाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जब तक समुराई हारा को अपने मन का केंद्र नहीं बना लेना है तब तक उसे युद्ध में भाग लेने की इजाजत नहीं है।

और यही उचित है। समुराई संसार के सर्वश्रेष्ठ योद्धाओं में गिने जाते है। दुनिया में समुराई का कोई मुकाबला नहीं है। वह भिन्न ही किस्म का मनुष्य है, भिन्न ही प्राणी है; क्योंकि उसका केंद्र भिन्न है।

वे कहते है कि जब तुम युद्ध करते हो तो समय नहीं रहता है। और मन को समय की जरूरत पड़ती है। वह हिसाब-किताब करता है। अगर तुम पर कोई आक्रमण करे और उसे समय तुम्हारा मन सोच-विचार करने लगे कि कैसे बचाव किया जाए, तो तुम गए; तुम अपना बचाव न कर सकोगे। समय नहीं है; तुम्हें तब समयातित में काम करना होगा। और मन समयातित में काम नहीं कर सकता है। मन को समय चाहिए। मन को समय चाहिए। चाहे कितना भी थोड़ा हो, मन को समय चाहिए।

नाभि के नीचे एक केंद्र है जिसे हारा कहते है; यह हारा समयातित में काम करता है। अगर चेतना को हारा पर स्थिर किया जाए और तब योद्धा लड़े तो वह युद्ध प्रज्ञा से लड़ा जाएगा। मस्तिष्क से नहीं। हारा पर स्थिर योद्धा आक्रमण होने के पूर्व जान जाता है के आक्रमण होने वाला है। यह हारा का एक सूक्ष्म भाव है। बुद्धि का नहीं। यह कोई अनुमान नहीं है; यह टेलीपैथी है।

इसके पहले कि तुम उस पर आक्रमण करो, उसके पहले कि तुम उस पर आक्रमण करने की सोचो। वह विचार उसे पहुंच जाता है। उसके हारा पर चोट लगती है और वह अपना बचाव करने को तत्पर हो जाता है। वह आक्रमण होने के पहले ही अपने बचाव में लग जाता है। उसने अपना बचाव कर लिया।

कभी-कभी जब दो समुराई आपस में लड़ते है तो हार-जीत मुश्किल हो जाती है। समस्या यह होती है कि कोई किसी को नहीं हरा सकता। किसी को विजेता नहीं घोषित कर सकता। एक तरह से निर्णय असंभव है; क्योंकि आक्रमण ही नहीं हो सकता। तुम्हारे आक्रमण करने के पहले ही वह जान जाता है।

एक भारतीय गणितज्ञ हुआ। सारा संसार चकित था; क्योंकि वह कोई हिसाब-किताब नहीं करता था। उसका नाम रामानुजम था। तुम उसे कोई भी समस्या दो और वह तुरंत उत्तर बता देता था। इंग्लैंड का सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ हार्डी तो रामानुजम के पीछे पागल था। हार्डी सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ था। लेकिन उसे भी किसी-किसी प्रश्न को हल करने में छह-छह घंटे लग जाते थे। लेकिन रामानुजम का हाल यह था कि तुम उसे प्रश्न दो और वह उसका उत्तर तुरंत बता देता था। इस ढंग से मन के काम करने का कोई उपाय नहीं है। मन को तो समय चाहिए। रामानुजम को बार-बार पूछा गया कि तुम यह कैसे करते हो? वह कहता था कि मैं नहीं जानता; तुम मुझे प्रश्न कहते हो और मुझे उसका उत्तर आ जाता है। वह कहीं नीचे से आता है। वह मेरे सिर से नहीं आता है।

यह उत्तर उसके हारा से आता था। उसे खुद यह बात नहीं मालूम थी। उसे कोई प्रशिक्षण भी नहीं मिला था। लेकिन मेरे देखे वह अपने पिछले जन्म में जापानी रहा होगा; क्योंकि भारत में हमने हारा पर काम नहीं किया है।

तंत्र कहता है कि अपने मन को भिन्न-भिन्न केंद्रों पर स्थिर करो और उसके भिन्न-भिन्न-भिन्न परिणाम होंगे। यह विधि मन को जीभ पर, जीभ के मध्य भाग पर स्थिर करने को कहती है।

''मुंह को थोड़ा सा खुला रखते हुए....।''

मानो तुम बोलने जा रहे हो। मुंह को बंद नहीं, थोड़ा सा खुला रखना है—मानो तुम बोलने वाले हो। ऐसा नहीं है कि तुम बोल रहे हो; ऐसा ही कि तुम बोलने जा रहे हो। मुंह को इतना ही खोलों जितना उस समय खोलते हो जब बोलने को होते हो। और तब मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। तब तुम्हें अनूठा अनुभव होगा। क्योंकि जीभ के ठीक बीच में एक केंद्र है जो तुम्हारे विचारों को नियंत्रित करता है। अगर तुम अचानक सजग हो जाओ और उस केंद्र पर मन को स्थिर करो तो तुम्हारे विचार बंद हो जाते है। जीभ के ठीक बीच में मन को स्थिर करो—मानो तुम्हारा समस्त मन जीभ में चला आया है। जीभी के ठीक बीच में।

मुंह को थोड़ा सा खुला रखो, जैसे कि तुम बोलने जा रहे हो। और तब मन को इस तरह स्थिर करो कि वह सिर में न होकर जीभ में आ जाए, जीभ के ठीक मध्य भाग में।

जीभ में वाणी का, बोलने का केंद्र है; और विचार वाणी है। जब तुम सोचते हो, विचार करते हो तो क्या करते हो? तुम अपने भीतर बातचीत करते हो। क्या तुम भीतर बातचीत किए बिना विचार कर सकते हो? तुम अकेले हो; तुम किसी दूसरे व्यक्ति के साथ बातचीत नहीं कर रहे हो। लेकिन तब भी तुम विचार कर रहे हो। तब तुम विचार कर रहे हो तो क्या कर रहे हो? तुम अपने बातचीत कर रहे हो, उसमें तुम्हारी जी संलग्न है।

अगली दफा जब तुम विचार में संलग्न होओ तो सजग होकर अपनी जीभ पर अवधान दो। उस वक्त तुम्हारी जीभ ऐसे कंपित होगी जैसे वह किसी के साथ बातचीत करते समय होती है। फिर अवधान दो और तुम्हें पता चलेगा कि तरंगें जीभ के मध्य में केंद्रित है; वे मध्य से उठकर पूरी जीभ पर फैल जाती है।

विचार करना अंतस की बातचीत है। और अगर तुम अपनी चेतना को, अपने मन को जीभ के मध्य में केंद्रित कर सको तो विचार ठहर जाते है। जो लोग मौन का अभ्यास करते है, वे यही तो करते है कि बातचीत के प्रति बहुत बोधपूर्ण हो जाते है। और अगर तुम महीने दो महीने, या वर्ष भर बिलकुल मौन रह सको। बिना बातचीत के रह सको , तो तुम देखोगें कि तुम्हारी जीभ कितनी जोर से कंपित होती है। तुम्हें इसका पता नहीं चलता है; क्योंकि तुम निरंतर बात करते रहते हो। और उससे तरंगों का निरसन हो जाता है।

लेकिन अगर अभी भी तुम रुककर अपने विचार के प्रति सजग होओ तो तुम्हें मालूम होगा कि जीभ थोड़ी-थोड़ी कंपित हो रही है। अब अपनी जीभ को पूरी तरह ठहरा दो, रोक दो और तब सोचने की चेष्टा करो; तुम नहीं सोच पाओगे। जीभ को ऐसे स्थिर कर दो जैसे वह जग गई हो। उसमें कोई गति मत होने दो; और तब तुम्हारा सोचना-विचारना असंभव हो जाएगा। केंद्र ठीक मध्य में है; मन को वहीं स्थिर करो।

''मुंह को थोड़ा-सा खुला रखते हुए मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।''

यह दूसरी विधि है और पहली जैसी ही है।

''अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।''

पहली विधि से तुम्हारा विचार बंद हो जाएगा। तुम अपने भीतर एक ठोसपन अनुभव करोगे—मानो तुम ठोस हो गए हो। जब विचार नहीं होते है तो तुम अचल हो जाते हो। थिर हो जाते हो। और जब विचार नहीं है और तुम अचल हो तो तुम शाश्वत के अंग हो जाते हो। यह शाश्वत बदलता हुआ लगाता है। लेकिन दरअसल वह अचल है, ठहरा हुआ है। निर्विचार में तुम शाश्वत के, अचल के अंग हो जाते हो।

विचार के रहते तुम चलायमान के, परिवर्तनशील के अंग हो; क्योंकि प्रकृति चलायमान है, संसार चलायमान है। यही कारण है कि हम इसे संसार कहते है। संसार का अर्थ है: चक्र, चाक। यह चल रहा है। चल रहा है; यह सतत घूम रहा है। संसार निरंतर गति है। और जो अद्दश्य है, परम है, वह अचल है, ठहरा हुआ है।

यह ऐसा है जैसे की चाक तो घूमता है। लेकिन जिसके सहारे वह घूमता है वह धुरी अचल है। चाक तभी घूम सकता है जब उसके केंद्र पर कुछ है जो सदा अचल है—धुरी अचल है। संसार चल रहा है, और ब्रहमा अचल है। जब विचार विसर्जित होता है तो तुम अचानक इस लोक से दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते हो। भीतरी गति के बंद होते ही तुम शाश्वत के अंग हो जाते हो—उस शाश्वत के, जो कभी बदलता नहीं है।

''अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, अकार ध्वनि को अनुभव करो।''

मुंह को थोड़ा-सा खुला रखे, मानों तुम बोलने जा रहे हो। और तब श्वास को भीतर ते जाओ। और उस ध्वनि के प्रति सजग रहो जो भीतर आती हुई श्वास से पैदा होती है। वह ही हकार है। चाहे श्वास भीतर जाती है, या बाहर। इस ध्वनि को तुम्हें पैदा नहीं करना है; तुम्हें तो अंदर आती श्वास को अपनी जीभ पर केवल महसूस करना है। यह बहुत धीमा स्वर है। लेकिन है। वह

हकार जैसा मालूम होता है। वह बहुत मौन है; मुश्किल से सुनाई देता है। उसे सुनने के लिए तुम्हें बहुत सजग होना पड़ेगा। लेकिन उसे पैदा करने की चेष्टा मत करना। अगर तुमने उसे पैदा करने की चेष्टा की तो तुम चुक जाओगे। पैदा की हुई ध्वनि किसी काम की नहीं होती। जब-जब श्वास भीतर जाती है या बाहर आती है, तब जो ध्वनि अपने आप पैदा होती है वह स्वाभाविक है।

लेकिन विधि कहती है कि भीतर आती श्वास के साथ प्रयोग करना है, बाहर जाती श्वास के साथ नहीं। क्योंकि बाहर जाती श्वास के साथ तुम भी बाहर चल जाओगे। ध्वनि के साथ-साथ तुम भी बाहर चले जाओगे। जब कि चेष्टा भीतर जाने की है। अंत: भीतर जाती श्वास के साथ हकार ध्वनि को अनुभव करो। देर-अबेर तुम्हें अनुभव होगा कि यह ध्वनि सिर्फ जीभ में ही नहीं, कंठ में भी हो रही है। लेकिन तब वह बहुत ही धीमी हो जाती है। उसे सुनने के लिए प्रगाढ़ जागरूकता की जरूरत है।

तो जीभ से शुरू करो; फिर धीरे-धीरे सजगता को बढ़ाओं, उसे महसूस करो। तब तुम उसे कंठ से सुनोंगे। और उसके बाद उसे अपने हृदय में सुनने लगोगे। और जब वह हृदय में पहुँचती है तो तुम मन के पार चले गए। ये सारी विधियां वह सेतु निर्मित करती है जहां से तुम विचार से निर्विचार में, मन से अ-मन में, सतह से कैंद्र में प्रवेश करते हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—44 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी आठवीं विधि:

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

ओम ध्वनि पर एकाग्र करो; लेकिन इस ओम में म न रहें। तब सिर्फ उ बचता है। यह कठिन विधि है; लेकिन कुछ लोगों के लिए यह योग्य पड़ सकती है। खासकर जो लोग ध्वनि के साथ काम करते है। संगीतज्ञ, कवि, जिनके काम बहुत संवेदनशील है, उनके लिए यह विधि सहयोगी हो सकती है। लेकिन दूसरों के लिए जिनके कान संवेदनशील नहीं है, यह विधि कठिन पड़ेगी। क्योंकि यह बहुत सूक्ष्म है।

तो तुम्हें ओम का उच्चारण करना है और इस उच्चारण में तीनों ध्वनियों को—अ, उ और म को महसूस करना है। ओम का उच्चारण करो और उसमें तीन ध्वनियों को—अ, उ और म को अनुभव करो। वे तीनों ओम में समाहित है। बहुत संवेदनशील काम ही इन तीनों ध्वनियों को अलग-अलग सुन सकते है। वे अलग-अलग है, यद्यपि बहुत करीब-करीब भी है। अगर तुम उन्हें अलग-अलग नहीं सुन सकते तो यह विधि तुम्हारे लिए नहीं है। तुम्हारे कानों को उनके लिए प्रशिक्षित करना होगा।

जापान में, विशेषकर झेन परंपरा में, वे पहले कानों को प्रशिक्षित करते है। कानों के प्रशिक्षण के उपाय है। बाहर हवा चल रही है; उसकी एक ध्वनि है। गुरु शिष्य से कहता है कि इस ध्वनि पर अपने कान को एकाग्र करो; उसके सूक्ष्म भेदों को, उसकी बदलाहटों को समझो; देखो कि कब ध्वनि कुपित है और कब उन्मत्त, कब ध्वनि करणावान है और कब प्रेमपूर्ण हे। कब वह शक्तिशाली है। और कब नाजुक है। ध्वनि की बारीकियों को अनुभव करो। वृक्षों से होकर हवा गुजर रही है। उस महसूस करो। नदी बह रही है; उसके सूक्ष्म भेदों को पहिचानों।

और महीनों साधक नदी के किनारे बैठकर उसके कलकल स्वर को सुनता रहता है। नदी का स्वर भी भिन्न-भिन्न होता है। वह सतत बदलता रहता है। बरसात में नदी पूर पर होती है; बहुत जीवंत होती है, उमड़ती होती है। उस समय उसके स्वर भिन्न होते है। और गर्मी में नदी ना कुछ होती है। उसका कलकल भी समाप्त हो जाता है। लेकिन अगर तुम सुनना चाहो तो वह सूक्ष्म स्वर भी सूना जा सकता है। साल भर नदी बदलती रहती है और साधक को सजग रहना पड़ता है।

हरमन हेस के उपन्यास सिद्धार्थ एक माझी के साथ रहता है। नदी है, माझी है और सिद्धार्थ है; उनके अतिरिक्त और कोई नहीं है। और माझी बहुत शांत व्यक्ति है। वह आजीवन नदी के साथ रहता है; वह इतना शांत हो गया है कि कभी-कभार ही बोलता है। और जब भी सिद्धार्थ अकेलापन महसूस करता है, माझी उससे कहता है कि तुम जाओ नदी के किनारे और उसकी कल-कल ध्वनि को सुनो। मनुष्य की बकवास कि बजाएं नदी को सुनना बेहतर है।

और सिद्धार्थ धीरे-धीरे नदी के साथ लयबद्ध हो जाता है। और तब उसे नदी की भाव दशा का बोध होने लगता है। नदी की भाव दशा बदलती रहती है। कभी वह मैत्रीपूर्ण है और कभी नहीं; कभी वह गाती है और कभी रोती-चीखती है; कभी वह हंसती है और कभी उसे उदासी घेर लेती है। और सिद्धार्थ उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म भेदों को पकड़ने लगता है। उसके कान नदी के साथ लयबद्ध हो जाते है।

तो हो सकता है, आरंभ में तुम्हें यह विधि कठिन मालूम पड़े। लेकिन प्रयोग करो; ओम का उच्चार करो और उच्चार करते हुए ओम की ध्वनि को अनुभव करो। इसके तीन, ध्वनियों सम्मिलित; ओम तीन स्वरों का समन्वय है। और जब तुम इन तीन स्वरों को अलग-अलग अनुभव कर लो तो उनमें से अ और म को छोड़ दो। तब तुम ओम नहीं कह सकोगे; क्योंकि अ निकल गया, म भी निकल गया। तब तुम ओम नहीं कह सकोगे; क्योंकि अ निकल गया , म भी निकल गया। तब सिर्फ उ बच रहेगा। क्या होगा?

मंत्र असली चीज नहीं है। असली चीज ओम नहीं है और न उसका छोडना है। असली चीज तुम्हारी संवेदनशीलता है। पहले तुम तीन ध्वनियों के प्रति संवेदनशील होते हो, जो कठिन काम है। और जब तुम इतने संवेदनशील हो जाते हो कि तुम उनमें से दो स्वरों को, अ और म को छोड़ सकते हो तो सिर्फ बीच का स्वर बचता है। और इस प्रयत्न में तुम्हारा मन विसर्जित हो जाता है। तुम उसमे इतने तल्लीन हो जाओगे, उसके प्रति इतने अवधान से भरे जाओगे, तुम इतने संवेदनशील हो जाओगे कि विचार विसर्जित हो जाएंगे। और अगर तुम सोच-विचार करते हो तो तुम स्वरों के प्रति संवेदनशील नहीं हो सकते।

यह तुम्हें तुम्हारे सिर से बारह निकालने का परोक्ष उपाय है। बहुत सारे उपाय प्रयोग में लाए गए है। और वे बहुत सरल प्रतीत होते है। तुम्हें आश्चर्य होता है कि इन सरल उपायों से क्या हो सकता है। लेकिन चमत्कार घटित होता है; क्योंकि वे उपाय परोक्ष है। तुम्हारे मन को बहुत सूक्ष्म चीज पर स्थिर किया जा सकता है। इस प्रयत्न में सोच-विचार नहीं चल सकता है।

तुम्हारा मन खो जाएगा। और तब किसी दिन अचानक तुम्हें इस बात का पता चलेगा। और तुम चकित रह जाओगे कि क्या हुआ।

झेन में कोआन का, पहेली का प्रयोग होता है। एक बहुत प्रचलित कोआन है जो नए साधकों को दिया जाता है। उन्हें कहा जाता है कि एक हाथ की ताली सुनो। अब ताली तो दो हाथों से बजती है। लेकिन उन्हें कहा जाता है कि एक हाथ से बजने वाली ताली को सुनो।

किसी झेन गुरु की सेवा में एक लड़का रहता था। वह देखता था कि अनेक लोग आते है, गुरु के पैर पर सिर रखते है और कहते है कि हमे बताएं कि हम किस पर ध्यान करें। गुरु उन्हें कोई कोआन दिया करता था। वह लड़का गुरु के छोटे-मोटे काम कर दिया करता था। वह उसकी सेवा में था। उसकी उम्र नौ साल की रही होगी। रोज-रोज साधकों को आते-जाते देखकर वह भी एक दिन बहुत गंभीरता के साथ गुरु के निकट गया और उसके चरणों में सिर रखकर निवेदन किया कि मुझे भी ध्यान करने के लिए कोई कोआन दें।

गुरु हंसा। लेकिन लड़का गंभीर बना रहा। तो गुरु ने उसे कहा कि ठीक है, एक हाथ की ताली सुनने की चेष्टा करो। और जब सुनाई पड़ जाए तो आकर मुझे बताना।

लड़के ने बहुत प्रयत्न किया। रात-रात भर उसे नींद नहीं आई। कुछ दिनों बात वह आकर कहता है मैंने सून ली। वह वृक्षों से गुजरती हवा है। लेकिन गुरु ने पूछा; इसमें हाथ कहा है? जाओ और फिर प्रयत्न करो। ऐसे लड़का रोज आत ही रहा। वह कोई ध्वनि खोज लेता और गुरु को बताता। लेकिन हर बार गुरु कहता कि यह भी नहीं है; और प्रयत्न करो।

फिर एक दिन लड़का गुरु के पास नहीं आया। गुरु ने उसकी बहुत प्रतीक्षा की; लेकिन वह नहीं आया। तब उसने अपने दूसरे शिष्यों से कहा कि जाकर पता करो कि क्या हुआ। गुरु ने कहा कि मालूम होता है कि उसने एक हाथ की ताली सुन ली है। शिष्य गए। लड़का एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थ बैठा था—मानों एक नवजात बुद्ध बैठा हो।

उन्होंने लौटकर गुरु को खबर दी। उन्होंने कहा कि हमें उसे हिलाने में डर लगा; वह तो नवजात बुद्ध मालूम होता है। मालूम पड़ता है कि उसने ताली सुन ली। तब गुरु स्वयं आया, उसने लड़के के चरणों में सिर रखा और पूछा: ''क्या तुमने सुना?'' मालूम होता है कि तुमने सुन लिया। लड़के ने स्वीकृति से सिर हिलाते हुए कहा: ''हां, लेकिन वह तो मौन है।

इस लड़के ने कैसे सुना? उसकी संवेदनशीलता विकसित हुई। उसने प्रत्येक ध्वनि को सुनने की चेष्टा की और उसने बहुत अवधान से सुना। उसका अवधान विकसित हुआ। उसकी नींद जाती रही। वह रात भर जाग कर सुनता कि एक हाथ की ताली क्या है। वह तुम्हारे जैसा बुद्धिमान नहीं था। उसने यह सोचा ही नहीं कि एक हाथ की ताली नहीं हो सकती।

वही पहेली तुम्हें दी जाए तो तुम प्रयोग करने वाले नहीं हो। तुम कहोगे कि यह मूढता है; एक हाथ की ताली नहीं हो सकती। लेकिन उस लड़के ने प्रयोग क्या। उसने सोचा कि जब गुरु ने कहा है तो उसमें जरूर कुछ होगा; उसमे श्रम किया। वह सरल था। जब भी उसे लगता है। कि कोई नई चीज है तो वह दौड़ाकर गुरु के पास जाता। इस ढंग से उसकी संवेदनशीलता विकसित होती गई। वह और-और सजग और बोध पूर्ण होता गया। वह एकाग्र हो गया। वह लड़का खोज में लगा था। इसलिए उसका मन विसर्जित हो गया। गुरु ने उससे कहा था कि अगर तुम सोच विचार करते रहोगे। तो तुम चूक जाओगे। कभी-कभी ऐसी ध्वनि होती है कि जो एक हाथ की होती है। इसलिए सजग रहना ताकि चूक न जाओ। और उसने प्रयत्न किया।

एक हाथ की ताली नहीं होती है। लेकिन यह तो संवेदनशीलता को, बोध को पैदा करने का एक परोक्ष उपाय था। और एक दिन अचानक सब कुछ विलीन हो गया। वह इतना अवधान पूर्ण हो गया कि अवधान ही रह गया। वह इतना संवेदनशील हो गया

कि संवेदनशीलता ही रह गई। वह इतना बोधपूर्ण हो गया कि बोध ही रह गया। वह सिर्फ बोधपूर्ण था; किसी चीज के प्रति बोधपूर्ण नहीं। और तब उसने कहा: ''मैंने सुन लिया। लेकिन यह तो मौन है, शुन्य है।''

लेकिन इसके लिए तुम्हें सतत और होश पूर्ण होने का अभ्यास करना होगा।

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

यह विधि है जो तुम्हें ध्वनि के सूक्ष्म भेदों के प्रति नाजुक भेदों के प्रति सजग बनाती है। इसका प्रयोग करते-करते तुम ओम को भूल जाओगे। न सिर्फ अ गिरेगा। न सिर्फ म गिरेगा। बल्कि किसी दिन तुम भी अचानक खो जाओगे। तब शून्य का, मौन का जन्म होगा। और तब तुम भी किसी वृक्ष के नीचे बैठे नवजात बुद्ध हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—45 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी नौवीं विधिः

अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।—तंत्र-सूत्र

''अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो। और तब हकार में अनायास सहजता को उपलब्ध होओ।''
''अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

कोई भी शब्द जिसका अंत अ: से होता है, उसका उच्चार चुपचाप करो। शब्द के अंत में अ: के होने पर जोर है। क्यो? क्योंकि जि क्षण तुम अ: का उच्चार करते हो, तुम्हारी श्वास बाहर जाती है। तुमने ख्याल नहीं किया होगा। अब ख्याल करना कि जब भी तुम्हारी श्वास बाहर जाती है, तुम ज्यादा शांत होते हो। और जब भी श्वास भीतर जाती है, तुम ज्यादा तनावग्रस्त होते हो। कारण यह है कि बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु है। और भीतर आने वाली श्वास जीवन है। तनाव जीवन का हिस्सा है।

मृत्यु का नहीं। विश्राम मृत्यु का अंग है, मृत्यु का अर्थ है पूर्ण विश्राम। जीवन पूर्ण विश्राम नहीं बन सकता। वह असंभव है। जीवन का अर्थ है तनाव, प्रयत्न; सिर्फ मृत्यु विश्रामपूर्ण है।
तो जब भी कोई व्यक्ति पूरी तरह विश्रामपूर्ण हो जाता है, वह दोनों हो जाता है—बाहर से वह जीवित होता है। और भीतर से मृत। तुम बुद्ध के चेहरे पर जीवन मृत्यु एक साथ देख सकते हो। इसलिए उनके चेहरे पर इतना मौन, इतनी शांति है—मौन और शांति मृत्यु के अंग है।

जीवन विश्रामपूर्ण नहीं है, राम में जब तुम सो जाते हो तो तुम विश्राम में होते हो। इसी लिए पुरानी परंपराएं कहती है कि मृत्यु और नींद समान है। नींद अस्थायी मृत्यु है। और यही कारण है कि रात्रि विश्राम दायी होती है। वह बाहर जाने वाली श्वास है। सुबह भीतर आने वाली श्वास है। दिन तुम्हें तनाव से भर देता है। रात तुम्हें विश्राम से भरती है। प्रकाश तनाव पैदा करता है, अंधकार विश्राम लाता है। यही वजह है कि तुम दिन में नहीं सो सकते। दिन में विश्राम करना कठिन है। प्रकाश जीवन जैसा है, वह मृत्यु विरोधी है। अंधकार मृत्यु जैसा है। वह मृत्यु के अनुकूल है।

तो अंधकार में गहरी विश्रांति है। और जो लोग अंधकार से डरते है, वे विश्राम में नहीं उतर सकते। यह असंभव है।

विश्राम अंधेरे में घटित होता है। और तुम्हारे जीवन के दोनों छोरों पर अंधरा है। जन्म के पहले तुम अंधेरे में होते हो। और मृत्यु के बाद तुम फिर अंधेरे में होते हो। अंधकार असीम है। और यह प्रकाश, यह जीवन उस अंधकार के भीतर एक क्षण जैसा है। अंधकार के समुद्र में प्रकाश लहर जैसा है जो उठता-गिरता रहता है। अगर तुम जीवन के दोनों छोरों को घेरने वाले अंधकार को स्मरण रख सको तो तुम यहीं और अभी विश्राम में हो सकते हो।

जीवन और मृत्यु अस्तित्व के दो छोर हे। भीतर आने वाली श्वास जीवन है, बहार जाने वाली श्वास मृत्यु है। ऐसा नहीं है कि तुम किसी दिन मरोगे, तुम प्रत्येक श्वास के साथ मर रहे हो।

यही कारण है कि हिंदू जीवन को श्वासों की गिनती कहते है, वे उसे वर्षों की गिनती नहीं कहते। तंत्र, योग आदि सभी भारतीय परंपराएं जीवन को श्वासों में गिनती है। वे कहती है कि तुम्हें इतनी श्वासों का जीवन मिला है। वे कहती है कि अगर तुम तेजी से श्वास लोगे, थोड़े समय में ज्यादा श्वासें लोगे तो तुम बहुत जल्दी मरोगे। और अगर तुम बहुत धीरे-धीरे श्वास लोगे, अगर एक निश्चित समय में कम श्वास लोगे तो तुम ज्यादा समय तक जीओगे।

और बात ऐसी ही है। अगर तुम पशुओं का निरीक्षण करोगे तो पाओगे कि बहुत धीमी श्वास लेने वाले पशु लंबी उम्र जीते है। उदाहरण के लिए हाथी है, हाथी की उम्र बड़ी है। क्योंकि उसकी श्वास धीमी चलती है। फिर कुत्ता है, उसकी श्वास तेज चलती है। और उसकी उम्र बहुत कम है। जो भी पशु बहुत तेज श्वास लेता होगा, उसकी उम्र लम्बी नहीं हो सकती। लंबी उम्र सदा धीमी श्वास के साथ जुड़ी है।

तंत्र, योग और अन्य भारतीय साधना पथ तुम्हारे जीवन का हिसाब तुम्हारी श्वासों से लगाते है। सच तो यह है कि तुम हरेक श्वास के साथ जन्मते हो और हरेक श्वास के साथ मरते हो। यह विधि बाहर जाने वाली श्वास को गहरे मौन में उतरने का माध्यम बनाती है। उपाय बनाती है। यह एक मृत्यु-विधि है।

''अ से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

श्वास बाहर गई है—इसलिए अ: से अंत होने वाले शब्द का उपयोग है यह अ: अर्थपूर्ण है; क्योंकि जब तुम अ: कहते हो वह तुम्हें पूरी तरह खाली कर देता है। उसके साथ पूरी श्वास बाहर निकल जाती है। कुछ भी भीतर बची नहीं रहती है। तुम

बिलकुल खाली हो जाते हो—खाली और मृत। एक क्षण के लिए, बहुत थोड़ी देर के लिए जीवन तुमसे बाहर निकल गया है और तुम मृत और खाली हो।

अगर इस रिक्ता इस खाली पन को तुम जान लो। उसके प्रति बोधपूर्ण हो जाओ तो तुम पूर्णत: रूपांतरित हो जाओगे। तुम और ही आदमी हो जाओगे। तब तुम भली भांति जान लोगे कि न यह जीवन तुम्हारा जीवन है और न यह मृत्यु ही तुम्हारी मृत्यु है। तब तुम उसे जान लोगे जो आती-जाती श्वासों के पास है, तब तुम साक्षी आत्मा को जान लोगे। और साक्षित्व उस समय आसानी से घट सकता है जब तुम श्वासों से खाली हो, क्योंकि तब जीवन उतार पर होता है। और सारे तनाव भी उतार पर होते है। तो इस विधि को प्रयोग में लाओ। यह बहुत ही सुंदर विधि है।

लेकिन आमतौर से, सामान्य आदत के मुताबिक, हम सदा भीतर आने वाली श्वास को ही महत्व देते है। हम बाहर जाने वाली श्वास को कभी महत्व नहीं देते। हम सदा भीतर लेते है। उसे बाहर नहीं छोड़ते। हम श्वास लेते है और शरीर उसे छोड़ता है। तुम अपनी श्वसन क्रिया का निरीक्षण करो और तुम्हें यह पता चल जाएगा।

हम सदा श्वास लेते है। हम उसे छोड़ते नहीं। छोड़ने का काम शरीर करता है। और इसका कारण यह है कि हम मृत्यु से भयभीत है। बस यही कारण है। अगर हमारा बस चलता तो हम कभी श्वास को बाहर जाने ही नहीं देते। हम श्वास को भीतर ही रोक रखते। कोई भी व्यक्ति श्वास छोड़ने पर जोर नहीं देता। सब लोग श्वास लेने की ही बात करते है। लेकिन श्वास को भीतर लेने के बाद उसे बाहर निकालना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए हम मजबूरी में उसे बाहर जाने देते है। उस हम किसी तरह बरदाश्त कर लेते है। क्योंकि श्वास छोड़े बगैर श्वास लेना असंभव है। इसलिए श्वास छोड़ना आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकृत है। लेकिन बुनियादी तौर से श्वास छोड़ने में हमारा कोई रस नहीं है।

और यह बात श्वास के संबंध में ही सही नहीं है। पूरे जीवन के प्रति हमारी दृष्टि यही है। जो भी हमें मिलता है, उसे हम मुट्ठी में बाँध लेते है। उसे छोड़ने का नाम ही नहीं लेते। यही मन का कृपणता है। और याद रहे, इसके बहुत परिणाम होते है। अगर तुम कब्जियत से पीडित हो तो उसका कारण यह है कि तुम श्वास तो लेते हो, लेकिन उसे छोड़ते नहीं। जो व्यक्ति श्वास लेना जानता है। लेकिन छोड़ना नहीं, वह कब्जियत से पीडित होगा। कब्जियत उसी चीज का दूसरा छोर है। वह किसी भी चीज को अपने से बाहर जाने देने के लिए राज़ी नहीं है। वह सिर्फ इकट्ठा करता जाता है। यह भयभीत है और भय के कारण यह इकट्ठा किए जाता है।

लेकिन जो चीज रोक ली जाती है वह विषाक्त हो जाती है। तुम श्वास तो लेते हो लेकिन अगर उसे छोड़ते नहीं तो वह श्वास जहर बन जाएगी और तुम उसके कारण मरोगे। अगर तुमने कंजूसी की तो तुम एक जीवनदायी तत्व को जहर में बदल दोगे। क्योंकि श्वास का बाहर जाना नितांत जरूरी है। बाहर जाती श्वास तुम्हारे भीतर से सब जहर को बाहर निकाल फेंकती है।

तो सच तो यह कि मृत्यु शुत्रि की प्रक्रिया है और जीवन अशुद्धि की, विषाक्त करने की प्रक्रिया है। यह बात विरोधाभासी मालूम पड़ेगी। जीवन विषाक्त करने की प्रक्रिया है, क्योंकि जीने के लिए बहुत सी चीजों को उपयोग में लाना पड़ता है। और जैसे ही तुम उनका उपयोग करते हो। वे विष में बदल जाती है। तब तुम श्वास लेते हो तो तुम आक्सीजन का उपयोग कर रहे हो, लेकिन उपयोग करने के बाद जो चीज बच रहती है वह विष है। आक्सीजन के कारण ही वह जीवन था। लेकिन जब तुमने उसका उपयोग कर लिया तो शेष विष हो जाता है। ऐसे ही जीवन हर चीज को जहर में बदलता रहता है।

मृत्यु शुद्ध की प्रकिया है। जब सारा शरीर विषाक्त हो जाता है। तब मृत्यु तुम्हें उस शरीर से मुक्त कर देती है। मृत्यु तुम्हें फिर से नया बना देती है। तुम्हें नया जन्म दे देगी। तुम्हें नया शरीर मिल जाएगा। मृत्यु के द्वारा शरीर का सब संग्रहीत विष प्रकृति में विलीन हो जाता है। और तुम्हें एक नया शरीर उपलब्ध होता है।

और यह बात प्रत्येक श्वास के साथ घटित होती है। बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु के समान है, वह विष को बाहर ले जाती है। और जब वह श्वास बाहर जाती है। तो तुम्हारे भीतर सब कुछ शांत होने लगता है। अगर तुम सारी की सारी श्वास बाहर फेंक दो, कुछ भी भीतर न रहने पाए तो तुम शांति के उस बिंदु को छू लोगे जो श्वास के भीतर रहते हुए कभी नहीं छुआ जा सकता था। यह ज्वार-भाटे जैसा है। आती हुई श्वास के साथ तुम्हारे पास जीवन-ज्वार आती है और जाती हुई श्वास के साथ सब कुछ शांत हो जाता है। ज्वार चला गया तब, तुम खाली, रिक्त सागरतट भर रह जाते हो। इस विधि का यही उपयोग करो।

''अ से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

बाहर जाने वाली श्वास पर जोर दो। और तुम इस विधि का उपयोग मन में अनेक परिवर्तन लाने के लिए कर सकते हो। अगर तुम कब्जियत से पीड़ित हो तो श्वास भूल जाओ। सिर्फ श्वास को बहार फेंको। श्वास भीतर ले जाने का काम शरीर को करने दो। तुम छोड़ने भर का काम करो। तुम श्वास को बाहर निकाल दो और भीतर ले जाने की फिक्र ही मत करो। शरीर वह काम अपने आप ही कर लेगा, तुम्हें उसकी चिंता नहीं लेनी है। उससे तुम मर नहीं जाओगे। शरीर ही श्वास को भीतर ले जाएगा। तुम छोड़ने भर का काम करो, शेष शरीर कर लेगा। और तुम्हारी कब्जियत जाती रहेगी।

अगर तुम ह्रदय रोग से पीड़ित हो तो श्वास को बाहर छोड़ो। लेने की फिक्र मत करो। फिर ह्रदय रोग तुम्हें कभी नहीं होगा। अगर सीढ़ियां चढ़ते हए या कहीं जाते हुए तुम्हें थकावट महसूस हो, तुम्हारा दम घूटने लगे तो तुम इतना ही करो: श्वास को बाहर छोड़ो, लो नहीं। और तब तुम कितनी ही सीढ़ियां चढ़ जाओगे। और नहीं थकोंगे। क्या होता है?

जब तुम श्वास छोड़ने पर जोर देते हो तो उसका मतलब है कि तुम अपने को छोड़ने का, अपने खोने को राज़ी हो। तब तुम मरने को राज़ी हो, तब तुम मत्यु से भयभीत नहीं हो। और यही चीज तुम्हें खोलती है। अन्यथा तुम बंद रहते हो। भय बंद करता है। जब बंद करता है। जब तुम श्वास छोड़ते हो तो पूरी व्यवस्था बदल जाती है। और वह मृत्यु को स्वीकार कर लेती है। भय जाता रहता है और तुम मृत्यु के लिए राज़ी हो जाते हो।

और वही व्यक्ति जीता है जो मरने के लिए तैयार है। सच तो यह हे कि वही जीता है जो मृत्यु से राज़ी है। केवल वही व्यक्ति जीवन के योग्य है। क्योंकि वह भयभीत नहीं है, जो व्यक्ति मृत्यु को स्वीकार करता है, मृत्यु का स्वागत करता है, मेहमान मानकर उसकी आवभगत करता है। उसके साथ रहता है। वही व्यक्ति जीवन में गहरे उतर सकता है।

जब एक कुत्ता मरता है तो दूसरे कुत्ते को कभी पता नहीं होता की मैं भी मर सकता हूं। जब भी मरता है, कोई दूसरा ही मरता है। तो कोई कुत्ता कैसे कल्पना करे के मैं भी मरने वाला हूं। उसने कभी अपने को मरते नहीं देखा। सदा किसी दूसरे ही मरते है। वह कैसे कल्पना करे, कैसे निष्पति निकाले कि मैं भी मरूंगा। पशु को मृत्यु का बोध नहीं होता। इसलिए कोई पशु संसार का त्याग नहीं करता। कोई पशु संन्यासी नहीं हो सकता है।

केवल एक बहुत ऊंच्ची कोटि की चेतना ही तुम्हें संन्यास की तरफ ले जा सकती है। मृत्यु के प्रति जागने से ही संन्यास घटित होता है। और अगर आदमी होकर भी तुम मृत्यु के प्रति जागरूक नहीं हो तो तुम अभी पशु ही हो। मनुष्य नहीं हुए हो। मनुष्य तो तुम तभी बनते हो जब मृत्यु का साक्षात्कार करते हो। अन्यथा तुममें और पशु में कोई फर्क नहीं है। पशु और मनुष्य में सब कुछ समान है, सिर्फ मृत्यु फर्क लाती है। मृत्यु का साक्षात्कार कर लेने के बाद तुम पशु नहीं रहते। तुम्हें कुछ घटित हुआ है जो कभी किसी पशु को घटित नहीं होता है। अब तुम एक भिन्न चेतना हो।

ऐसा ही इन विधियों के साथ है। वे सरल मालूम होती है। लेकिन वे बुनियादी सत्य को स्पर्श करती है। जब श्वास बाहर जा रही है, जब तुम जीवन से सर्वथा रिक्त हो, तब तुम मृत्यु को छूते हो, तब तुम उसके बहुत करीब पहुंच जाते हो। तब तुम्हारे भीतर सब कुछ मौन और शांत हो जाता है।

इसे मंत्र की तरह उपयोग करो। जब भी तुम्हें थकावट महसूस हो, तनाव महससू हो तो अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार करो। अल्लाह से भी काम चलेगा। कोई शब्द जो तुम्हारी श्वास को समग्रत: से बाहर ले आए। जो तुम्हें श्वास से बिलकुल खाली कर दे। जिस क्षण तुम श्वास से रिक्त होते हो उसी क्षण तुम जीवन से भी रिक्त हो जाते हो।

और तुम्हारी सारी समस्याएं जीवन की समस्याएं है, मृत्यु की कोई समस्या नहीं हे। तुम्हारी चिंताएं, तुम्हारे दुःख-संताप, तुम्हारा क्रोध, सब जीवन की समस्याएं है। मृत्यु तो समस्याहीन है। मृत्यु असमस्या है। मृत्यु कभी किसी को सतस्या नहीं देती है। तुम भला सोचते हो कि मैं मृत्यु से डरता हूं, कि मृत्यु समस्या पैदा करती है। लेकिन हकीकत यह है कि मृत्यु नहीं जीवन के प्रति तुम्हारा आग्रह, जीवन के प्रति तुम्हारा लगाव समस्या पैदा करता है। जीवन ही समस्या खड़ी करता है। मृत्यु तो सब समस्याओं का विसर्जन कर देती है।

तो जब श्वास बिलकुल बाहर निकल जाए—अ:ss—तुम जीवन से रिक्त हो गए। उस क्षण अपने भीतर देखो। जब श्वास बिलकुल बाहर निकल जाए। दूसरी श्वास लेने के पहले उस अंतराल में गहरे उतरो जो रिक्त है और उसके आंतरिक मौन और शांति के प्रति सजग होओ। उस क्षण तुम बुद्ध हो।

और अगर तुम उस क्षण को पकड़ लो। तो तुम्हें वह स्वाद मिल जाएगा जिसे बुद्ध ने जाना। और एक बार यह सवाद जान लिया गया तो फिर तुम उसे आने-जाने वाली श्वास से अलग कर ले सकते हो। फिर श्वास आती-जाती रह सकती है। और तुम चेतना की उस अवस्था में रह सकते हो। वह तो सदा है, फिर उसे उधाड़ना है। और उसे उस समय उघाड़ना आसान होता है जब तुम जीवन से, श्वास से रिक्त होते हो।

और जब श्वास बाहर निकल जाती है, तब सब कुछ निकल जाता है। इस क्षण किसी प्रयास की जरूरत नहीं है। इस क्षण अनायास बिना प्रयास के सजगता को, बोध को उपल्बध हुआ जा सकता हे। मृत्यु के इस क्षण को उपलब्ध होओ। यही वह क्षण है जब तुम द्वार के बिलकुल करीब होते हो, परमात्मा के द्वार के बिलकुल पास होते हो। जो प्रकट है, जा असार है, वह बाहर चला गया; इस क्षणमे तुम लहर नहीं रहे। सागर हो गए। अभी तुम बिलकुल सागर के निकट हो। अगर तुम बोधपूर्ण हो सके, सजग हो सके, तो तुम भूल जाओगे कि मैं लहर हूं। फिर लहर आएगी। लेकिन अब तुम लहर के साथ कभी तादात्म्य नहीं बनाओगे। तुम सागर बने रहोगे। एक बार तुमने जान लिया कि तुम सागर हो, फिर तुम लहर नहीं हो सकते।

जीवन लहर है, मृत्यु सागर है। इस कारण ही बुद्ध इस बात पर जोर देते है कि मेरा निर्वाण मृत्युवत है। वे कभी नहीं कहते कि तुम अमरत्व को प्राप्त हो जाओगे। वे इतना ही कहते है कि तुम मिटोगे, समग्रत: जीसस कहते है; मेरे पास आओ और मैं तुम्हें विराट जीवन दूंगा। बुद्ध कहते है: मेरे पास मिटने के लिए आओ, मैं तुम्हें समग्र मृत्यु दूंगा। और दोनों एक ही बात है। लेकिन बुद्ध की शब्दावली ज्याद बुनियादी है। मगर तुम उससे भयभीत हो।

यही कारण है कि बुद्ध का भारत में प्रभाव नहीं पड़ सका। उन्हें पूरी तरह उखाड़ फेंका गया। और हम कहे चले जाते है कि भूमि धार्मिक है। लेकिन यहां जो सर्वाधिक धार्मिक पूरूष हुआ उसे यहां हमने जमने नहीं दिया। किस तरह की धार्मिक भूमि है यह? हम दूसरा बुद्ध नहीं पैदा कर सकते। बुद्ध अप्रतिम है। जब भी संसार भारत को धर्म-भूमि के रूप में स्मरण करता है, वह बुद्ध को स्मरण करता है। और किसी को नहीं। बुद्ध के कारण ही भारत धार्मिक समझा जाता है। किसी प्रकार की धर्म-भूमि हे यह। बुद्ध को यहां जगह नहीं मिली उन्हें सर्वथा उखाड़ फेंका गया। कारण यह था कि बुद्ध को यहां जगह नहीं मिली, उनहें सर्वथा उखाड़ फेंका गया।

कारण यह था कि बुद्ध ने मृत्यु की भाषा उपयोग की। ब्राह्मण जीवन की भाषा उपयोग करते है। वे कहते है ब्रह्म; बुद्ध ने कहा निर्वाण। ब्रह्म का अर्थ जीवन, अनंत जीवन है; और निर्वाण का अर्थ परिसमाप्ति, मृत्यु , समग्र मृत्यु। बुद्ध कहते है कि तुम्हारी सामान्य मृत्यु समग्र नहीं होती। तुम्हें फिर-फिर जन्म लेना होता है। साधारण मृत्यु समग्र नहीं है। तुम पून: संसार

में आना पड़ता है। बुद्ध कहते थे कि मैं तुम्हें ऐसी समग्र मृत्यु दूंगा। कि तुम्हें फिर कभी जन्म लेने की जरूरत नहीं पडेगी। समग्र मृत्यु का अर्थ है कि अब दूबारा जन्म संभव नहीं है।

इसलिए बुद्ध कहते है कि यह तथाकथित मृत्यु-मृत्यु नहीं है। यह विश्राम है, तुम फिर जीवित हो उठते हो। यह मृत्यु तो बाहर गई श्वास जैसी है। तुम फिर श्वास भीतर लोगे। और तुम्हारा पुन: जन्म हो जाएगा। बुद्ध कहते है कि मैं तुम्हें वह उपाय बताता हूं कि बाहर गई श्वास फिर वापस नहीं लौटेगी। वही समग्र मृत्यु है। निर्वाण है।

''तब हकार में अनायास सहजता को उपलब्ध होओ।''

इसका प्रयोग करो। किसी भी समय यह प्रयोग कर सकते हो। बस या रेलगाड़ी में यात्रा कराते हुए, या अपने आफिस जाते हुए। जब भी तुम्हें समय मिले अल्लाह शब्द बड़ा काम का है—इस कारण नहीं कि वहां आसमान में कोई अल्लाह है। वरन इस अ: के कारण। यह शब्द सुंदर है। और जितना कही कोई अल्लाह-अल्लाह कहता है उतना ही वह शब्द छोटा होता जाता है। अल्लाह से वह लाह हो जाता है। और फिर लाह से आह रह जाता है। यह अच्छा है। लेकिन तुम अ: से अंत होने वाले किसी भी शब्द को काम में ला सकते हो, केवल अ: से भी चलेगा।

तुमने देखा होगा कि जब भी तुम तनाव से भरते हो, तुम एक आह भरकर हलके हो जाते हो। या जब तुम खुशी से भरते हो, बहुत खुशी से, तब तुम अहा कहते हो और पूरी श्वास बाहर निकल जाती है। और तुम अपने भीतर एक अपूर्व शांति अनुभव करते हो। इसे प्रयोग करो। जब तुम खूब प्रसन्न हो तो श्वास अंदर लो और देखो कि क्या होता है। तुम स्वस्थ अनुभव नहीं करोगे। जितना अहा कहने से करते हो। वह फर्क श्वास के कारण है।

भाषाएं अलग-अलग है, लेकिन ये दो चीजें सभी भाषाओं में समान हे। सारी धरती पर जहां भी कोई थकावट अनुभव करता है वह आह करता है। दरअसल वह मृत्यु को बुलाकर कहता है कि मुझे विश्राम दो। और जब वह आह्लादित होता है। आनंदित होता है, तब वह अहा कहता है। वह आनंद से इतना पूरित है कि वह मृत्युसे नहीं डरता। वह अपने को पूरी तरह छोड़ने को खोने को राज़ी है।

और अगर तुम इस विधि का निरंतर प्रयोग करते रहो तो उसके गहरे परिणाम होंगे। तब तुम्हारे भी जो सहज है, तुम उसके बोध से भर जाओगे। तब तुम अपनी सहजता को उपलब्ध हो जाओगे। तुम सहज ही हो, लेकिन तुम जीवन से इतने बंधे हो, ग्रस्त हो कि उसके पीछे खड़ी सहज सत्ता से अपरिचित रह जाते हो। लेकिन तब तुम जीवन से, आने वाली श्वास से ग्रस्त नही हो, तब वह सहज सत्ता प्रकट होती है। तब उसकी झलक मिलती है। और धीरे-धीरे वह झलक उपलब्धि में बदल जाती है। तुम्हारी सिद्धि बन जाएगी।

और तुमने उसे एक बार जान लिया तो फिर तुम उसे भुला नहीं सकोगे। वह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे तुम निर्मित करते हो। वह सवाभाविक है, सहज है; उसे बनाना नहीं , उघाड़ना भर है। वह तो है ही, तुम भूल गए हो। बस स्मरण करना है, उधाड़ना है।

शरीर अपने विवेक से चलता है। वह उतना ही ग्रहण करता है जितना जरूरी है। जब उसे ज्यादा की जरूरत होती है तो वैसी स्थिति बना लेता है और कम की जरूरत होती है तो वैसी ही स्थिति बना लेता है। शरीर कभी अति पर नहीं जाता है। वह सदा संतुलित रहता है। जब तुम श्वास लेते हो तब वह संतुलित नहीं है। क्योंकि तुम्हें नहीं मालूम है कि शरीर की जरूरत क्या है। और यह जरूरत क्षण-क्षण बदलती रहती है।

इसलिए शरीर को मौका दो, तुम तो बस श्वास छोड़ने भर का काम करो, उसे बाहर फेंको। और तब शरीर खुद श्वास लेने का काम कर लेगा। और शरीर जब खुद श्वास अंदर लेता है तो वह धीरे-धीरे लेता है। और गहरे लेता है। और पेट तक ले जाता है। वह श्वास ठीक नाभि-केंद्र पर चोट करती है। जिससे तुम्हारा पेट ऊपर नीचे होता है। और अगर श्वास लेने का काम भी तुम करोगे तो फिर समग्रता से श्वास छोड़ ने सकोगे। तब श्वास भीतर बची रहेगी। और उपर से ली गई श्वास गहराई में न उतर सकेगी। इसीलिए श्वास क्रिया उथली हो जाती है। तुम श्वास भीतर लेते रहते हो और भीतर जहर इकट्ठा होता जाता है।

वे कहते है कि तुम्हारे फेंफड़े में कई हजार छिद्र है। और उनमें से सिर्फ दो हजार छिद्रों तक ही श्वास पहुंच पाती है। बाकी चार हजार छिद्र तो सदा जहरीली गैस से भरे रहते है। जिन्हें सदा खाली करने की जरूरत है। वह जो तुम्हारी छाती का दो तिहाई हिस्सा जहर से भरा रहता है। वह तुम्हारे शरीर में मन में दुःख और चिंता और संताप लाता है।

बच्चा सदा श्वास छोड़ता है लेता नहीं। लेने का काम सदा शरीर करता है। जब बच्चा जन्म लेता है तो वह जो पहला काम करता है वह रोना है। उसे रोने के साथ ही उसका कंठ खुलता है। रोने के साथ ही वह पहल अ: बोलता है, उस रोने के साथ ही मां के द्वारा भीतर ली गई हवा बाहर निकल जाती है। वह उसकी पहल श्वास क्रिया है। श्वास क्रिया का आरंभ।

बच्चा सदा श्वास छोड़ता है। और जब बच्चा श्वास लेने लगे, जब उसका जोर छोड़ने से हटकर लेने पर चला जाए तो सावधान हो जाना; तब बच्चा बूढ़ा होने लगा। उसका अर्थ है कि बच्चे ने वह तुमसे सीखा है, वह तनावग्रस्त हो गया है।

जब तुम तनाव ग्रस्त होते हो तो तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते हो। क्यों? तब तुम्हारा पेट सख्त होता है। जब तुम तनाव में होते हो तो तुम्हारा पेट सख्त हो जाता है। वह सख्ती श्वास को गहरे नहीं जाने देती। तब तुम उथली श्वास ही लेने लगते हो।

अ: का प्रयोग करो। वह तुम्हारे चारो और एक सुंदर भाव निर्मित करता है। जब भी तुम थकावट महसूस करो, अ: कहकर श्वास को बाहर फेंको। और श्वास छोड़ने पर बल दो। तुम भिन्न ही आदमी होगे और एक भिन्न ही मन विकसित होगा। श्वास लेने पर जोर देकर तुमने कंजूस मन और कंजुस शरीर विकसित किए है। श्वास छोड़ने पर बल देकर वह कंजूसी विदा हो जाएगी। और उसके साथ ही अन्य अनेक समस्याएं विदा हो जाएंगी। तब दूसरे पर मालकियत करने का भाव तिरोहित हो जायेगा।

तो तंत्र यह नहीं कहता है कि मालकियत का भाव छोड़ो, तंत्र कहता है कि अपने श्वास-प्रश्वास का ढंग बदल दो और मालकियत अपने आप छूट जायेगी। तुम अपनी श्वास को देखो, अपने भावों को देखो और तुम्हें बोध हो जाएगा। जो भी गलत है वह भीतर जाने वाली श्वास को महत्व देने के कारण है और जो भी शुभ है ओर सत्य है , शिव है, और सुंदर है। वह बाहर जाने वाली श्वास के साथ संबंधित है। जब तुम झूठ बोलते हो, तुम अपनी श्वास को रोक रखते हो, और जब सच बोलते हो तो श्वास को कभी नहीं रोकते। झूठ बोलते समय तुम्हें डर लगता है और उस डर के कारण तुम श्वास को रोक रखते हो। तुम्हें यह डर भी होता है कि बाहर जाने वाली श्वास के साथ कही छिपाया गया सत्य भी प्रकट न हो जाये।

इस अ: का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग करो और तुम शरीर और मन से ज्यादा स्वस्थ रहोगे। और तुम्हें एक विशेष ढंग की शांति और विश्राम का अनुभव होगा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—41 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी पाँचवीं विधि:

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए …….–ओशो

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रित ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।
वही चीज।

''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रीय ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।''

तुम किसी वाद्य को सुन रहे हो—सितार या किसी अनय वाद्य को। उसमें कई स्वर है। सजग होकर उसके केंद्रीय स्वर को सुनो। उस स्वर को जो उसका केंद्र हो और उसके चारों और सभी स्वर घूमते हों; उसकी आंतरिक धारा को सुनो, जो अन्य सभी स्वरों को सम्हाले हुए हो। जैसे तुम्हारे समूचे शरीर को उसका मेरुदंड, उसकी रीढ़ सम्हाले हुए है। वैसे ही संगीत की भी रीढ़ होती है। संगीत को सुनते हुए सजग होकर उसमे प्रवेश करो और उसके मेरुदंड को खोजों—उस केंद्रीय स्वर को खोजों जो पूरे संगीत को सम्हाले हुए है। स्वर तो आते जाते रहते है। लेकिन केंद्रीय तत्व प्रवाहमान रहता है। उसके प्रति जागरूक होओ।
बुनियादी रूप से मूलत: संगीत का उपयोग ध्यान के लिए किया जाता था। भारतीय संगीत का विकास तो विशेष रूप से ध्यान की विधि के रूप में ही हुआ था। वैसे ही भारतीय नृत्य का विकास भी ध्यान विधि के लिए के लिए तैयार किया गया था। संगीतज्ञ या नर्तक के लिए ही नहीं श्रोता या दर्शक के लिए भी वे गहरे ध्यान के उपाय थे।

नर्तक या संगीतज्ञ मात्र टेक्नीशियन भी हो सकता है। अगर उसके नृत्य या संगीत में ध्यान नहीं है तो वह टेक्नीशियन ही है। वह बड़ा टेक्नीशियन हो सकता है। लेकिन तब उसने संगीत में आत्मा नहीं है, शरीर भर है। आत्मा तो तब होती है जब संगीतज्ञ गहरा ध्यानी हो। संगीत तो बाहरी चीज है। सितार बजाते हुए वादक सितार ही नहीं बजाता है, वह भीतर अपने बोध को भी जगाता है। बाहर सितार बजता है और भीतर उसका गहन बोध गति करता है। बहार संगीत बहता रहता है; लेकिन संगीतज्ञ अपने अंतरस्थ केंद्र पर सदा सजग बोधपूर्ण बना रहता है। वही बोध समाधि बन जाता है। वही शिखर बन जाता है।

कहते है कि संगीतज्ञ जब सचमुच संगीतज्ञ हो जाता है तो वह अपना वाद्य तोड़ देता है। वह अब उसके काम का न रहा है। और अगर उसे अब भी वाद्य की जरूरत पड़ती है तो वह अभी संगीतज्ञ नहीं हुआ है। वह अभी सिक्खड़ ही है। सीख रहा है। अगर तुम ध्यान के साथ संगीत का अभ्यास करते हो, उसे ध्यान बनाते हो तो देर-अबेर आंतरिक संगीत ज्यादा महत्वपूर्ण हो जाएगा। और बाहरी संगीत ने सिर्फ कम महत्वपूर्ण रहेगा, बल्कि अंतत: वह बाधा बन जाएगा। तुम सितार को उठाकर फेंक

दोगे। तुम वाद्य को अलग रख दोगे। क्योंकि अब तुम्हें तुम्हारा आंतरिक वाद्य मिल गया है। लेकिन वह बहारी वाद्य के बिना नहीं मिल सकता। बहारी वाद्य के साथ आसानी से सजग हुआ जा सकता है। लेकिन जब सजगता सध जाए तो तुम बाहर को छोड़ो और भीतर गति कर जाओ। यही बात श्रोता के लिए भी सही है।

लेकिन जब तुम संगीत सुनते हो, तो क्या करते हो? तुम ध्यान नहीं करते हो; उलटे तुम संगीत का शराब की तरह उपयोग करते हो। तुम विश्राम के लिए उसका उपयोग करते हो। यही दुर्भाग्य है। यही पीड़ा है। जो विधियां जागरूकता के लिए विकसित की गई थी उनका उपयोग नींद के लिए किया जा रहा है। और ऐसे ही आदमी अपने को धोखा दिये जा रहा है। अगर तुम्हें कोई चीज जागने के लिए दि जा रही है।

यही कारण है कि सदियों-सदियों तक सदगुरूओं के उपदेशों को गुप्त रखा गया। क्योंकि सोचा गया कि सोए हुए व्यक्ति को विधियां बताना व्यर्थ है। वह उसे सोने के ही काम लगाएगा; अन्यथा वह नहीं कर सकता। इसलिए पात्रों को ही विधियां दी जाती थी। ऐसे विशेष शिष्यों को ही उनका प्रयोग बताया जाता था जो अपनी नींद को छोड़ने को राज़ी है। जो अपनी नींद से जागने के लिए तैयार है।

ओस्पेंस्की ने अपनी एक पुस्तक जार्ज गुरजिएफ को यह कहकर समर्पित की है कि ''इस व्यक्ति ने मेरी नींद तोड़ी है।''

ऐसे लोग उपद्रवी होते है। गुरजिएफ, बुद्ध या जीसस जैसे लोग उपद्रवी ही होंगे। यही कारण है कि हम उनसे बदला लेते है। जो हमारी नींद में बाधा डालता है। उसे हम सूली पर चढ़ा देते है। वह हमें नहीं भाता है। हम सुंदर सपने देख रहे थे और वह आकर हमारी नींद में बाधा डालता है। तुम उसकी हत्या कर देना चाहते हो। स्वप्न इतना मधुर था।

स्वप्न मधुर हो चाहे न हो, लेकिन एक बात निश्चित है कि वह स्वप्न है और व्यर्थ है, बेकार है। और स्वप्न अगर सुंदर है तो ज्यादा खतरनाक है; क्योंकि उसमें आकर्षण अधिक होगा। वह नशे का काम कर सकता है।

हम संगीत का, नृत्य का उपयोग नशे के रूप कर रहे है। और अगर तुम संगीत और नृत्य का उपयोग नशे की तरह कर रहे हो तो वे तुम्हारी नींद के लिए ही नहीं, तुम्हारी कामुकता के लिए भी नशे का काम देंगे। और यह स्मरण रहे कि कामुकता और नींद संगी-साथी है। जो जितना सोया-सोया होगा, वह उतना ही कामुक होगा। जो जितना जागा हुआ होगा, वह उतना ही कम कामुक होगा। कामुकता की जड़ नींद में है। जब तुम जागोगे तो ज्यादा प्रेमपूर्ण होओगे; कामवासना की पूरी ऊर्जा प्रेम में रूपांतरित हो जाती है।

यह सूत्र कहता है: ''तार वाले वाद्यों को सुनते हुए उनकी संयुक्त केंद्रीय ध्वनि को सुनो; इस प्रकार सर्वव्यापकता को उपलब्ध होओ।''

और तब तुम उसे जान लोगे जो जानना है, जो जानने योग्य है। तब तुम सर्वव्यापक हो जाओगे। उस संगीत के साथ, उसके केंद्रीय तत्व को प्राप्त कर तुम जाग जाओगे। और उसे जागरूकता के साथ तुम सर्वव्यापी हो जाओगे।

अभी तो तुम कहीं एक जगह हो; उस बिंदु को हम अहंकार कहते है। अभी तुम उसी बिंदु पर हो। अगर तुम जाग जाओगे तो यह बिंदु विलीन हो जायेगा। तब तुम कहीं एक जगह नहीं होगे, सब जगह होगे। सर्वव्यापी हो जाओगे। तब तुम सर्व ही हो जाओगे। तुम सागर हो जाओगे, तुम अनंत हो जाओगे।

मन सीमा है; ध्यान से अनंत में प्रवेश है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—42 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी छठवीं विधि:

तंत्र-सूत्र—विधि—42 (ओशो)
किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो कि वह सुनाई दे;

''किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो कि वह सुनाई दे; फिर उस उच्चार को मंद से मंदतर किए जाओ—जैसे-जैसे भाव मौन लयबद्धता में लीन होता जाए।''

कोई भी ध्वनि काम देगी; लेकिन अगर तुम्हारी कोई प्रिय ध्वनि हो तो वह बेहतर होगी। क्योंकि तुम्हारी प्रिय ध्वनि मात्र ध्वनि नहीं रहती; जब तुम उसका उच्चार करते हो तो उसके साथ एक अप्रकट भाव भी उठता है। और फिर धीरे-धीरे वह ध्वनि तो विलीन हो जाएगी और भाव भर रह जाएगा।

ध्वनि को भाव की तरह से जाने वाले मार्ग की तरह उपयोग करना चाहिए। ध्वनि मन है और भाव हृदय है। मन को हृदय से मिलने के लिए मार्ग चाहिए। हृदय में सीधा प्रवेश कठिन है। हम हृदय को इतना भुला दिए है। हम हृदय के बिना इतने जन्मों से रहते आए है कि हमें पता ही नहीं रहा कि कहां से उसमे प्रवेश करें। द्वार बंद मालूम पड़ता है। हम हृदय की बात बहुत करते है। लेकिन वह बातचीत भी मन की ही है। हम कहते है कि हम हृदय से प्रेम करते है। लेकिन हमारा प्रेम भी मानसिक है। मस्तिष्क गत है। हमारा प्रेम भी बौद्धिक प्रेम है। हृदय की बात भी मस्तिष्क में घटित होती है। हमें पता ही नहीं रहा है कि हृदय कहां है।

हृदय से मेरा अभिप्राय शारीरिक हृदय से नहीं है। उसे तो हम जानते है। लेकिन शरीर शास्त्री और वैद्य-डाक्टर कहेंगे कि उस हृदय में प्रेम की संभावना नहीं है; वह तो केवल पंप का काम करता है, फुफ्फुस का काम करता है। उसमे और कुछ नहीं है। और बातें बस कपोलकल्पना है, कविता है, स्वप्न है।

लेकिन तंत्र जानता है कि तुम्हारे शारीरिक ह्रदय के पीछे ही एक गहरा केंद्र छिपा है। उस गहरे केंद्र तक मन के द्वारा ही पहुंचा जा सकता है। क्योंकि हम मन में है। हम अपने मन में है और अंतस की और कोई भी यात्रा वहीं से आरंभ हो सकती है।

मन ध्वनि है। आवाज है। अगर सब ध्वनि बंद हो जाए तो तुम्हारा मन नहीं रहेगा। मौन में मन नहीं है। यही कारण है कि मौन पर इतना बल दिया जाता है। मौन अ-मन अवस्था है। आमतौर से हम कहते है कि मेरा मन शांत हो रहा है। यह बात ही बेतुकी है। अर्थहीन है। क्योंकि मन का अर्थ है मौन की अनुपस्थिति। तुम यह नहीं कह सकते कि मन शांत है। मन है तो शांत नहीं हो सकता और शांति है तो मन नहीं हो सकता। शांत मन नाम की कोई चीज नहीं होती। हो नहीं सकती। यह ऐसा ही है जैसे कि तुम कहो कि कोई व्यक्ति जीवित मृत है। उसका कोई अर्थ नहीं है। अगर वह मृत है तो वह जीवित नहीं हो सकता। और अगर वह जीवित है तो मृत नहीं हो सकता। सच तो यह है कि मन जब विदा होता है तो शांति आती है। या कहो कि शांति आती है तो मन विदा हो जाता है। दोनों एक साथ नहीं हो सकते।

मन ध्वनि है। अगर यह ध्वनि व्यवस्थित है तो तुम स्वस्थ चित हो। और अगर वह अराजक हो तो तुम विक्षिप्त कहलाओगे। लेकिन दोनों हालत में ध्वनि है। आवाज है। और हम मन के तल पर रहते है। उस तल से ह्रदय के आंतरिक तल पर कैसे उतरा जाए?
ध्वनि का उपयोग करो। ध्वनि का उच्चार करो। किसी एक ध्वनि का उच्चार उपयोगी होगा। अगर मन में अनेक ध्वनियां है तो उन्हें छोड़ना कठिन होगा। और अगर एक ही ध्वनि हो तो उसे सरलता से छोड़ा जा सकता है। इसलिए पहले एक ध्वनि के लिए अनेक का त्याग करना होगा। एकाग्रता का यही उपयोग है।

इसलिए अच्छा हो कि कोई ध्वनि, कोई नाम, कोई मंत्र लो, जो तुम्हें प्रीतिकर हो, जिससे तुम्हारा भाव जुड़ा हो। अगर कोई हिंदू राम शब्द का उपयोग करता है तो उसके साथ उसका भाव जुड़ा होगा। यह उसके लिए मात्र शब्द नहीं रहेगा। यह उसकी बुद्धि तक ही सीमित नहीं रहेगा; इसकी तरंगें उसके ह्रदय तक चली जाएंगी उसको भला इसका पता न हो; लेकिन यह ध्वनि उसके रक्त में समाई है। उसकी मांस मज्जा में सम्माहित है। उसके पीछे लंबी परंपरा है। गहरे संस्कार है; उसके पीछे जन्मों-जन्मों के संस्कार है। जिस ध्वनि के साथ तुम्हारा लंबा लगाव बन जाता है। वह तुममें गहरी जड़ें जमा लेती है। इसका उपयोग करो। उसका उपयोग किया जा सकता है।

यही कारण है कि दुनिया के दो सबसे पुराने धर्म—हिंदू और यहूदी—धर्म परिवर्तन में कभी विश्वास नहीं करते। वे सबसे प्राचीन धर्म है, आदि धर्म है; और सारे धर्म उनकी ही शाखा प्रशाखा है। ईसाइयत और इसलाम यहूदी परंपरा की शाखाएं है। और बौद्ध, जैन और सिक्ख धर्म हिंदू धर्म की शाखाएं है। और ये दोनों आदि धर्म धर्म-परिवर्तन को नहीं मानती।

अगर तुम्हें किसी ध्वनि से प्रेम नहीं है तो अपना नाम ही उपयोग करो। लेकिन यह भी बहुत कठिन है। कारण यह है कि तुम अपने प्रति इतनी निंदा से भरे हो कि तुम्हें अपने प्रति कोई भाव नहीं है। कोई आदर नहीं है। दूसरे भले तुम्हारा आदर करते हों; लेकिन तुम खुद अपना आदर नहीं करते हो।

तो पहले बात है कि कोई उपयोगी ध्वनि खोजों। उदाहरण के लिए, अपने प्रेमी या अपनी प्रेमिका का नाम भी चलेगा। अगर तुम्हें फूल से प्रेम है तो गुलाब शब्द काम दे देगा। कोई भी ध्वनि जो तुम्हें भाती है। जिसे सुनकर तुम स्वस्थ अनुभव करते हो। उसका उपयोग कर लो। और अगर तुम्हें ऐसा कोई शब्द न मिले तो परंपरागत स्रोतों से जो कुछ शब्द उपल्बध है उनका उपयोग कर सकते हो। ओम का उपयोग करो। आमीन का उपयोग करो। मरिया भी चलेगा। राम भी चलेगा। बुद्ध भी चलेगा। महावीर का नाम भी काम में लाया जा सकता है। कोई भी नाम जिसके लिए तुम्हें भाव हो, चलेगा। लेकिन भाव होना जरूरी है। इसीलिए गुरु का नाम सहयोगी हो सकता है। लेकिन भाव चाहिए। भाव अनिवार्य है।

''किसी ध्वनि का उच्चार ऐसे करो, कि वह सुनाई दे; फिर उस उच्चार को मंद से मंदतर किए जाओ—जैसे-जैसे भाव मौन लयबद्धता में लीन होता जाए।''

ध्वनि को निरंतर घटाते जाओ। उच्चार को इतना धीमा करो कि तुम्हें भी उसे सुनने के लिए प्रयत्न कना पड़े। ध्वनि को कम करते जाओ, और तुम्हें फर्क मालूम होगा। ध्वनि जितनी धीमी होगी, तुम उतने ही भाव से भरोंगे। और जब ध्वनि विलीन होती है तो भाव ही शेष रहता है। इस भाव को नाम नहीं दिया जा सकता वह प्रेम है, प्रगाढ़ प्रेम है। लेकिन यह प्रेम किसी व्यक्ति विशेष के प्रति नहीं है। यही फर्क है।

जब तुम कोई ध्वनि या शब्द उपयोग करते हो तो उसके साथ प्रेम जुड़ा रहता है। तुम राम-राम करते हो तो इस शब्द के प्रति तुम्हारे भीतर बड़ा गहरा भाव है। लेकिन यह भाव राम के प्रति निवेदित है, राम पर सीमित है। लेकिन जब तुम राम ध्वनि को मंद से मंदतर करते जाते हो तो एक क्षण आयेगा। जब राम विदा हो जाएगा। ध्वनि विदा हो जाएगी और सिर्फ भाव शेष रहेगा। यह प्रेम का भाव है जो राम के प्रति नहीं है। यह किसी के भी प्रति नहीं है। केवल प्रेम का भाव है—मानो तुम प्रेम के सागर हो।

प्रेम जब किसी के प्रति निवेदित नहीं होता तो वह ह्रदय का प्रेम होता है। और जब वह निवेदित प्रेम होता है तो वह मस्तिष्क का होता है। जो प्रेम किसी के प्रति है, वह मस्तिष्क से घटित होता है। और केवल प्रेम मात्र प्रेम ह्रदय को होता है। और यह केवल प्रेम अनिवेदित प्रेम ही प्रार्थना बनता है। अगर वह किसी के प्रति निवेदित है तो वह प्रार्थना नहीं बन सकता; तब तुम अभी रहा पर ही हो।

इसीलिए मैं कहता हूं कि अगर तुम ईसाई हो तो तुम हिंदू की भांति नहीं आरंभ कर सकते; तुम्हें ईसाई की भांति आरंभ करना चाहिए। अगर तुम मुसलमान हो तो तुम ईसाई की तरह शुरू नहीं कर सकते। तुम्हें मुसलमान की तरह ही शुरू करना चाहिए। लेकिन तुम जितने गहरे जाओगे उतने ही कम मुसलमान या ईसाई या हिंदू रहोगे। सिर्फ आरंभ हिंदू मुसलमान या ईसाई की तरह से होगा।

तुम जितना ही ह्रदय की तरफ गति करोगे—ध्वनि जिनी कम होगी और भाव जितना बढ़ेगा—तुम उतने ही कम हिंदू या मुसलमान रह जाओगे। और जब ध्वनि विलीन हो जाएगी तो तुम केवल मनुष्य होगे...न हिंदू। न मुसलमान। न ईसाई।

संप्रदाय या धर्म का यही फर्क है। धर्म एक है; संप्रदाय अनेक है। संप्रदाय शुरू करने में सहयोगी है। लेकिन तुम अगर सोचते हो कि संप्रदाय अंत है, मंजिल है, तो तुम कही के नहीं रहोगे। वे आरंभ भर है। तुम्हें उनके पार जाना होगा; क्योंकि आरंभ अंत नहीं है। अंत में धर्म है; आरंभ में संप्रदाय है। संप्रदाय का उपयोग धर्म के लिए करो। सीमित का उपयोग असीम के लिए करो; क्षुद्र का उपयोग विराट के लिए करो।

यदि तुम किसी हिंदू मंदिर में गये हो तो वहां तुमने गर्भ-गृह का नाम सुना होगा। मंदिर के अंतरस्थ भाग को गर्भ कहते है। शायद तुमने ध्यान न दिया हो कि उसे गर्भ क्यों कहते है। अगर तुम मंदिर की ध्वनि का उच्चार करोगे—हरेक मंदिर की अपनी ध्वनि है, अपना मंत्र है। अपना इष्ट देवता है। और इस इष्ट देवता से संबंधित मंत्र है। अगर उस ध्वनि का उच्चार करोगे तो पाओगे कि उससे वहां वही उष्णता पैदा होती है जो मां के गर्भ में पाई जाती है। यही कारण है कि मंदिर के गर्भ जैसा गोल और बंद, करीब-करीब बंद बनाया जाता है। उसमे एक ही छोटा सा द्वारा रहता है।

जब ईसाई पहली बार भारत आये और उन्होंने हिंदू मंदिरों को देखा तो उन्हें लगा कि ये मंदिर तो बहुत अस्वास्थ्यकर कर है। उनमें खिड़की नहीं है। सिर्फ एक छोटा सा दरवाजा है। लेकिन मां के गर्भ में भी तो एक ही द्वार होता है। और उसमे भी हवा के आने-जाने की व्यवस्था नहीं रहती। यही वजह है कि मंदिर को ठीक मां के पेट जैसा बनाया जाता है। उसमे एक ही दरवाजा

रखा जाता है। अगर तुम उसकी ध्वनि का उच्चार करते हो तो गर्भ सजीव हो उठता है। और इसे इसलिए भी गर्भ कहा जाता है। क्योंकि वहां तुम नया जन्म ग्रहण कर सकते हो। तुम नया मनुष्य बन सकते हो।

यही कारण है कि मंदिरों में अन्य धर्मों के लोगों को प्रवेश नहीं मिलता। अगर कोई मुसलमान नहीं है तो उसे मक्का में प्रवेश नहीं मिल सकता है। और यह ठीक है। इसमे कोई भूल नहीं है। इसका कारण यह है कि मक्का एक विशेष विज्ञान का स्थान है। जो व्यक्ति मुसलमान नहीं है वह वहां ऐसी तरंग लेकिर जाएगा जो पूरे वातावरण के लिए उपद्रव हो सकती है। अगर किसी मुसलमान को हिंदू मंदिर में प्रवेश नहीं मिलता है तो यह अपमानजनक नहीं है। जो सुधारक है, वह मंदिरों के विषय में कुछ नहीं जानते। धर्म एक गुह्म विज्ञान है। वे केवल उपद्रव पैदा करते है।

हिंदू मंदिर केवल हिंदुओं के लिए है। क्योंकि हिंदू मंदिर एक विशेष स्थान है, विशेष उदेश्य से निर्मित हुआ है। सदियों-सदियों से वे इस प्रयत्न में लगे है। कि कैसे जीवंत मंदिर बनाएँ जाएं। और कोई भी व्यक्ति उसमे उपद्रव पैदा कर सकता है। और यह उपद्रव खतरनाक है। सिद्ध हो सकता है। मंदिर कोई सार्वजनिक स्थान नहीं है। वहाँ एक विशेष उदेश्य से और विशेष लोगों के लिए बनाया गया है। वह आम दर्शकों के लिए नहीं है।

यही कारण है कि पुराने दिनों में आम दर्शकों को वहां प्रवेश नहीं मिलता था। अब सब को जाने दिया जाता है; क्योंकि हम नहीं जानते है कि हम क्या कर रहे है। दर्शकों को नहीं जाने दिया जाना चाहिए। यह कोई खेल तमाशे का स्थान नहीं है। यह स्थान विशेष तरंगों से तरंगायित है, विशेष उदेश्य के लिए निर्मित हुआ है।

इसलिए एक स्थान का उपयोग करो—स्थान के रूप में मंदिर अच्छा है। ये विधियां मंदिर के लिए है। मंदिर अच्छा है; मस्जिद अच्छी है। चर्च अच्छा है। तुम्हारा अपना धर इन विधियों के लिए उपयुक्त नहीं है। वहां इतना कोलाहल है कि वह अराजकता का स्थान बन गया है। और तुम इतने बलवान नहीं हो कि अपनी ध्वनि से उस वातावरण को बदल सको। तो अच्छा है कि किसी ऐसी जगह चले जाओ। जो किसी विशेष ध्वनि के लिए बना हो। ऐसे स्थान का उपयोग करो। और अच्छा है कि रोज-रोज एक ही स्थान को काम में लाओ।

धीरे-धीरे तुम शक्ति शाली हो जाओगे। और धीरे-धीरे मन से ह्रदय में उतर जाओगे। तब तुम कही भी यह प्रयोग कर सकते हो। तब सारा ब्रह्मांड तुम्हारा मंदिर बन जाएगा। तब समस्या नहीं रहेगी।

लेकिन आरंभ में स्थान का चुनाव जरूरी है। और अगर समय का, निश्चित समय का चुनाव कर सको तो यह और अच्छा। क्योंकि तब वह मंदिर उस निश्चित समय पर तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा। रोज ठीक उसी समय पर मंदिर तुम्हारा इंतजार करेगा। उस वक्त वह ज्यादा खुला होगा। उसे प्रसन्नता होगी कि तुम आ गए। वह सारा स्थान प्रसन्न होगा। और मैं ये बात प्रतीक के अर्थ में नहीं कह रहा हूं, यह एक सच्चाई है।

यह ऐसा है कि जैसे तुम किसी निश्चित समय पर भोजन लेते हो और रोज ठीक उसी समय पर तुम्हारा शरीर भूख अनुभव करने लगता है। शरीर की अपनी अलग आंतरिक घड़ी है। शरीर अपने ठीक समय पर भूख प्यास अनुभव करता है। अगर तुम प्रतिदिन एक विशेष समय पर सोते हो तो तुम्हारा पूरा शरीर उस समय सोने के लिए तैयार हो जाता है। और अगर तुम रोज-रोज अपने खाने और सोन का समय बदलते रहते हो तुम अपने शरीर को उपद्रव में डाल रहे हो।

अब तो वे कहते है कि ऐसे परिवर्तन से तुम्हारी आयु प्रभावित हो सकती है। अगर तुम रोज-रोज अपने शरीर की चर्या को, रूटीन को बदलते हो तो संभव है कि तुम्हारी उम्र कम हो जाए। यदि तुम अस्सी साल जीने वाले थे तो इस सतत परिवर्तन के कारण तुम सत्तर साल ही जीओगे। तुम दस साल गंवा दोगे। और अगर तुम शरीर की घड़ी के अनुसार अपनी चर्या चलाते हो तो तुम आसानी से अस्सी साल की बजाएं नब्बे साल वर्षो तक जीवित रह सकत हो। दस वर्ष जोड़े जा सकते है।

ठीक इसी तरह तुम्हारे चारों तरफ हर चीज की अपनी घड़ी है और सारा संसार जागतिक समय में गति करता है। अगर तुम प्रतिदिन निश्चित समय पर मंदिर में प्रवेश करते हो तो मंदिर तुम्हारे लिए तैयार होता है। और तुम मंदिर के लिए तैयार होते हो। ये दो तैयारियाँ आपस में मिलती है। और उसका फल हजार गुना हो जाता है।

यह तुम अपने घर में एक छोटा सा कोना इसके लिए सुरक्षित कर ले सकते हो। लेकिन तब उस स्थान को किसी और काम के लिए उपयोग मत करो। क्योंकि हर काम की अपनी तरंगें है। अगर तुम उस स्थान को व्यवसाय के काम में लाते हो, वहां ताश खेलते हो, तो वह स्थान कनफ्यूज्ड हो जाएगा। अब तो इन कनफ्यूज्ड को रेकार्ड करने के यंत्र है; जाना जा सकता है कि स्थान कनफ्यूज्ड है।

अगर तुम अपने घर में एक छोटा सा कोना इसके लिए अलग कर लो तो अच्छा । घर में एक छोटा सा मंदिर ही बना लो; बहुत अच्छा रहेगा। अगर तुम एक छोटा मंदिर बना सको तो सर्वोतम है। लेकिन फिर उसे किसी दूसरे काम में मत लाओ। उसे अपना निजी मंदिर रहने दो। और शीध्र ही परिणाम आने लगेंगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—27

तंत्र-सूत्र—विधि—43 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी सातवीं विधिः

स्वामी आनंद प्रसाद "मनसा"

"मुंह को थोड़ा-सा खुला रखते हुए मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। अथवा जब श्‍वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।"

मन को शरीर में कहीं भी स्थिर किया जा सकता है। सामान्यत: हमने उसे सिर में स्थिर कर रखा है; लेकिन उसे कहीं भी स्थिर किया जा सकता है। और स्थिर करने के स्थान के बदलने से तुम्हारी गुणवता बदल जाती है। उदाहरण के लिए, पूर्व के

कई देशों में, जापान, चीन, कोरिया आदि में परंपरा से सिखाया जाता है कि मन पेट में है। सि में नहीं है। और इस करण उन लोगों के मन के गुण बदल जाते है। जो सोचते है कि मन पेट में है। जो लोग सोचते है कि मन सिर में है। उनके ये गुण नहीं हो सकते।

असल में मन कहीं भी नहीं है। सिर में है मस्तिष्क; मन का अर्थ है एकाग्रता; तुम मन को कही भी स्थिर कर सकते हो। और जहां उसे एक बार स्थिर कर दोगे वहां से उसे हटाना कठिन होगा। उदाहरण के लिए, अब मनोवैज्ञानिक और मनुष्य के गहरे में शोध करने वाले लोग कहते है कि जब तुम संभोग कर रहे हो तो तुम्हारा मन सिर से उतर कर कामेंद्रित पर चला जाता है। अन्यथा तुम्हारी काम-क्रिया बेकार जाएगी। अगर मन सिर में ही रहे तो तुम काम-भोग में गहरे नहीं उतर पाओगे। तब काम-समाधि नहीं घटित होगी और तुम्हें आर्गाज्म का अनुभव नहीं होगा। तब तुम्हें उसका शिखर नहीं प्राप्त होगा। तुम बच्चे पैदा कर सकेत हो; लेकिन तुम्हें प्रेम के शिखर का कोई अनुभव नहीं होगा।
तुम्हें उसकी कोई समझ नहीं है। जिसकी तंत्र चर्चा करता है या जिसे खजुराहो चित्रित करता है। तुम नहीं समझ सकते। क्या तुमने खजुराहो देखा है, अगर तुम खजुराहो नहीं गए हो तो तुमने खजुराहो के मंदिरों के चित्र अवश्य देखे होंगे। उनके चेहरों को ध्यान से देखो; संभोग रत जोड़ों को देखो, उनके चेहरो को देखो। वे चेहरे दिव्य मालूम पड़ते है। वे काम-भोग में संलग्न है; लेकिन उनके चेहरों में बुद्ध की समाधि झलकती है। उन्हें क्या हो गया है?

उनका काम भोग मानसिक नहीं है। वे बुद्धि से संभोग नहीं करते है; वे उसके संबंध में विचार नहीं करते है। वे बुद्धि से नीचे उतर आए है; उनका फोकस बदल गया है; और सिर से हट जाने के कारण उनकी चेतना कर्मेंद्रिय पर उतर आई है। अब मन नहीं है। अब मन अ-मन हो गया है। इसीलिए उनके चेहरों पर बुद्ध की समाधि झलकती है। उनका काम-भोग ध्यान बन गया है।

क्यों फोकस बदल गया। अगर तुम अपने मन के फोकस को बदल देते हो, अगर तुम उसे सिर से हटा लेते हो। तो सिर विश्राम में होता है। चेहरा विश्राम में होता है। तब सभी तनाव विलीन हो जाते है। तब तुम नहीं हो, तब अहंकार नहीं है।

यही कारण है कि चित जितना बौद्धिक होता है, बुद्धिवादी होता है, उतना ही वह प्रेम करने में असमर्थ हो जाता है। प्रेम के लिए भिन्न फोकसिंग की जरूरत है। प्रेम में तुम्हारा फोकस ह्रदय के पास होने की जरूरत है; संभोग में तुम्हारा फोकस काम केंद्र के पास होने की जरूरत है। जब तुम गणित करते हो तो सिर उसके लिए उचित जगह है। लेकिन प्रेम गणित नहीं है; संभोग बिलकुल गणित नहीं है। और अगर सिर में गणित से भरे होकर तुम संभोग में उतरते हो तो तुम अपनी ऊर्जा नष्ट करते हो। तब सारा श्रम बेचैनी पैदा करेगा।

लेकिन मन को बदला जा सकता है। तंत्र कहता है कि शरीर में सात चक्र है और मन को उनमें से किसी भी चक्र पर स्थिर किया जा सकता है। प्रत्येक चक्र का अलग गुण है। और अगर तुम एक विशेष चक्र पर एकाग्र करोगे तो तुम भिन्न ही व्यक्ति हो जाओगे।

जापान में एक सैनिक समुदाय हुआ है, जो भारत के क्षत्रियों जैसा है। उन्हें समुराई कहते है, उन्हें सैनिक के रूप में प्रशिक्षित किया जाता है। और उन्हें पहली सीख यह दी जाती है कि तुम अपने मन को सिर से उतार कर नाभि-केंद्र के ठीक दो इंच नीचे ले आओ। जापान में इस केंद्र को हारा कहते हे। समुराई को मन को हारा पर लाने का प्रशिक्षण दिया जाता है। जब तक समुराई हारा को अपने मन का केंद्र नहीं बना लेना है तब तक उसे युद्ध में भाग लेने की इजाजत नहीं है।

और यही उचित है। समुराई संसार के सर्वश्रेष्ठ योद्धाओं में गिने जाते है। दुनिया में समुराई का कोई मुकाबला नहीं है। वह भिन्न ही किस्म का मनुष्य है, भिन्न ही प्राणी है; क्योंकि उसका केंद्र भिन्न है।

वे कहते है कि जब तुम युद्ध करते हो तो समय नहीं रहता है। और मन को समय की जरूरत पड़ती है। वह हिसाब-किताब करता है। अगर तुम पर कोई आक्रमण करे और उसे समय तुम्हारा मन सोच-विचार करने लगे कि कैसे बचाव किया जाए, तो तुम गए; तुम अपना बचाव न कर सकोगे। समय नहीं है; तुम्हें तब समयातित में काम करना होगा। और मन समयातित में काम नहीं कर सकता है। मन को समय चाहिए। मन को समय चाहिए। चाहे कितना भी थोड़ा हो, मन को समय चाहिए।

नाभि के नीचे एक केंद्र है जिसे हारा कहते है; यह हारा समयातित में काम करता है। अगर चेतना को हारा पर स्थिर किया जाए और तब योद्धा लड़े तो वह युद्ध प्रज्ञा से लड़ा जाएगा। मस्तिष्क से नहीं। हारा पर स्थिर योद्धा आक्रमण होने के पूर्व जान जाता है के आक्रमण होने वाला है। यह हारा का एक सूक्ष्म भाव है। बुद्धि का नहीं। यह कोई अनुमान नहीं है; यह टेलीपैथी है। इसके पहले कि तुम उस पर आक्रमण करो, उसके पहले कि तुम उस पर आक्रमण करने की सोचो। वह विचार उसे पहुंच जाता है। उसके हारा पर चोट लगती है और वह अपना बचाव करने को तत्पर हो जाता है। वह आक्रमण होने के पहले ही अपने बचाव में लग जाता है। उसने अपना बचाव कर लिया।

कभी-कभी जब दो समुराई आपस में लड़ते है तो हार-जीत मुश्किल हो जाती है। समस्या यह होती है कि कोई किसी को नहीं हरा सकता। किसी को विजेता नहीं घोषित कर सकता। एक तरह से निर्णय असंभव है; क्योंकि आक्रमण ही नहीं हो सकता। तुम्हारे आक्रमण करने के पहले ही वह जान जाता है।

एक भारतीय गणितज्ञ हुआ। सारा संसार चकित था; क्योंकि वह कोई हिसाब-किताब नहीं करता था। उसका नाम रामानुजम था। तुम उसे कोई भी समस्या दो और वह तुरंत उत्तर बता देता था। इंग्लैंड का सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ हार्डी तो रामानुजम के पीछे पागल था। हार्डी सर्वश्रेष्ठ गणितज्ञ था। लेकिन उसे भी किसी-किसी प्रश्न को हल करने में छह-छह घंटे लग जाते थे। लेकिन रामानुजम का हाल यह था कि तुम उसे प्रश्न दो और वह उसका उत्तर तुरंत बता देता था। इस ढंग से मन के काम करने का कोई उपाय नहीं है। मन को तो समय चाहिए। रामानुजम को बार-बार पूछा गया कि तुम यह कैसे करते हो? वह कहता था कि मैं नहीं जानता; तुम मुझे प्रश्न कहते हो और मुझे उसका उत्तर आ जाता है। वह कहीं नीचे से आता है। वह मेरे सिर से नहीं आता है।

यह उत्तर उसके हारा से आता था। उसे खुद यह बात नहीं मालूम थी। उसे कोई प्रशिक्षण भी नहीं मिला था। लेकिन मेरे देखे वह अपने पिछले जन्म में जापानी रहा होगा; क्योंकि भारत में हमने हारा पर काम नहीं किया है।

तंत्र कहता है कि अपने मन को भिन्न-भिन्न केंद्रों पर स्थिर करो और उसके भिन्न-भिन्न-भिन्न परिणाम होंगे। यह विधि मन को जीभ पर, जीभ के मध्य भाग पर स्थिर करने को कहती है।

''मुंह को थोड़ा सा खुला रखते हुए....।''

मानो तुम बोलने जा रहे हो। मुंह को बंद नहीं, थोड़ा सा खुला रखना है—मानो तुम बोलने वाले हो। ऐसा नहीं है कि तुम बोल रहे हो; ऐसा ही कि तुम बोलने जा रहे हो। मुंह को इतना ही खोलों जितना उस समय खोलते हो जब बोलने को होते हो। और तब मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। तब तुम्हें अनूठा अनुभव होगा। क्योंकि जीभ के ठीक बीच में एक केंद्र है जो तुम्हारे विचारों को नियंत्रित करता है। अगर तुम अचानक सजग हो जाओ और उस केंद्र पर मन को स्थिर करो तो तुम्हारे विचार बंद हो जाते है। जीभ के ठीक बीच में मन को स्थिर करो—मानो तुम्हारा समस्त मन जीभ में चला आया है। जीभी के ठीक बीच में।

मुंह को थोड़ा सा खुला रखो, जैसे कि तुम बोलने जा रहे हो। और तब मन को इस तरह स्थिर करो कि वह सिर में न होकर जीभ में आ जाए, जीभ के ठीक मध्य भाग में।

जीभ में वाणी का, बोलने का केंद्र है; और विचार वाणी है। जब तुम सोचते हो, विचार करते हो तो क्या करते हो? तुम अपने भीतर बातचीत करते हो। क्या तुम भीतर बातचीत किए बिना विचार कर सकते हो? तुम अकेले हो; तुम किसी दूसरे व्यक्ति के साथ बातचीत नहीं कर रहे हो। लेकिन तब भी तुम विचार कर रहे हो। तब तुम विचार कर रहे हो तो क्या कर रहे हो? तुम अपने बातचीत कर रहे हो, उसमें तुम्हारी जी संलग्न है।

अगली दफा जब तुम विचार में संलग्न होओ तो सजग होकर अपनी जीभ पर अवधान दो। उस वक्त तुम्हारी जीभ ऐसे कंपित होगी जैसे वह किसी के साथ बातचीत करते समय होती है। फिर अवधान दो और तुम्हें पता चलेगा कि तरंगें जीभ के मध्य में केंद्रित है; वे मध्य से उठकर पूरी जीभ पर फैल जाती है।

विचार करना अंतस की बातचीत है। और अगर तुम अपनी चेतना को, अपने मन को जीभ के मध्य में केंद्रित कर सको तो विचार ठहर जाते है। जो लोग मौन का अभ्यास करते है, वे यही तो करते है कि बातचीत के प्रति बहुत बोधपूर्ण हो जाते है। और अगर तुम महीने दो महीने, या वर्ष भर बिलकुल मौन रह सको। बिना बातचीत के रह सको , तो तुम देखोगें कि तुम्हारी जीभ कितनी जोर से कंपित होती है। तुम्हें इसका पता नहीं चलता है; क्योंकि तुम निरंतर बात करते रहते हो। और उससे तरंगों का निरसन हो जाता है।

लेकिन अगर अभी भी तुम रुककर अपने विचार के प्रति सजग होओ तो तुम्हें मालूम होगा कि जीभ थोड़ी-थोड़ी कंपित हो रही है। अब अपनी जीभ को पूरी तरह ठहरा दो, रोक दो और तब सोचने की चेष्टा करो; तुम नहीं सोच पाओगे। जीभ को ऐसे स्थिर कर दो जैसे वह जग गई हो। उसमें कोई गति मत होने दो; और तब तुम्हारा सोचना-विचारना असंभव हो जाएगा। केंद्र ठीक मध्य में है; मन को वहीं स्थिर करो।

''मुंह को थोड़ा-सा खुला रखते हुए मन को जीभ के बीच में स्थिर करो। अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।''

यह दूसरी विधि है और पहली जैसी ही है।

''अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, हकार ध्वनि को अनुभव करो।''

पहली विधि से तुम्हारा विचार बंद हो जाएगा। तुम अपने भीतर एक ठोसपन अनुभव करोगे—मानो तुम ठोस हो गए हो। जब विचार नहीं होते है तो तुम अचल हो जाते हो। थिर हो जाते हो। और जब विचार नहीं है और तुम अचल हो तो तुम शाश्वत के अंग हो जाते हो। यह शाश्वत बदलता हुआ लगाता है। लेकिन दरअसल वह अचल है, ठहरा हुआ है। निर्विचार में तुम शाश्वत के, अचल के अंग हो जाते हो।

विचार के रहते तुम चलायमान के, परिवर्तनशील के अंग हो; क्योंकि प्रकृति चलायमान है, संसार चलायमान है। यही कारण है कि हम इसे संसार कहते है। संसार का अर्थ है: चक्र, चाक। यह चल रहा है। चल रहा है; यह सतत घूम रहा है। संसार निरंतर गति है। और जो अदृश्य है, परम है, वह अचल है, ठहरा हुआ है।

यह ऐसा है जैसे की चाक तो घूमता है। लेकिन जिसके सहारे वह घूमता है वह धुरी अचल है। चाक तभी घूम सकता है जब उसके केंद्र पर कुछ है जो सदा अचल है—धुरी अचल है। संसार चल रहा है, और ब्रह्मा अचल है। जब विचार विसर्जित होता है तो तुम अचानक इस लोक से दूसरे लोक में प्रवेश कर जाते हो। भीतरी गति के बंद होते ही तुम शाश्वत के अंग हो जाते हो—उस शाश्वत के, जो कभी बदलता नहीं है।

''अथवा जब श्वास चुपचाप भीतर आए, अकार ध्वनि को अनुभव करो।''

मुंह को थोड़ा-सा खुला रखे, मानों तुम बोलने जा रहे हो। और तब श्वास को भीतर ते जाओ। और उस ध्वनि के प्रति सजग रहो जो भीतर आती हुई श्वास से पैदा होती है। वह ही हकार है। चाहे श्वास भीतर जाती है, या बाहर। इस ध्वनि को तुम्हें पैदा नहीं करना है; तुम्हें तो अंदर आती श्वास को अपनी जीभ पर केवल महसूस करना है। यह बहुत धीमा स्वर है। लेकिन है। वह हकार जैसा मालूम होता है। वह बहुत मौन है; मुश्किल से सुनाई देता है। उसे सुनने के लिए तुम्हें बहुत सजग होना पड़ेगा। लेकिन उसे पैदा करने की चेष्टा मत करना। अगर तुमने उसे पैदा करने की चेष्टा की तो तुम चुक जाओगे। पैदा की हुई ध्वनि किसी काम की नहीं होती। जब-जब श्वास भीतर जाती है या बाहर आती है, तब जो ध्वनि अपने आप पैदा होती है वह स्वाभाविक है।

लेकिन विधि कहती है कि भीतर आती श्वास के साथ प्रयोग करना है, बाहर जाती श्वास के साथ नहीं। क्योंकि बाहर जाती श्वास के साथ तुम भी बाहर चल जाओगे। ध्वनि के साथ-साथ तुम भी बाहर चले जाओगे। जब कि चेष्टा भीतर जाने की है। अंत: भीतर जाती श्वास के साथ हकार ध्वनि को अनुभव करो। देर-अबेर तुम्हें अनुभव होगा कि यह ध्वनि सिर्फ जीभ में ही नहीं, कंठ में भी हो रही है। लेकिन तब वह बहुत ही धीमी हो जाती है। उसे सुनने के लिए प्रगाढ़ जागरूकता की जरूरत है।

तो जीभ से शुरू करो; फिर धीरे-धीरे सजगता को बढ़ाओं, उसे महसूस करो। तब तुम उसे कंठ से सुनोंगे। और उसके बाद उसे अपने हृदय में सुनने लगोगे। और जब वह हृदय में पहुँचती है तो तुम मन के पार चले गए। ये सारी विधियां वह सेतु निर्मित करती है जहां से तुम विचार से निर्विचार में, मन से अ-मन में, सतह से केंद्र में प्रवेश करते हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—44 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी आठवीं विधि:

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

ओम ध्वनि पर एकाग्र करो; लेकिन इस ओम में म न रहें। तब सिर्फ उ बचता है। यह कठिन विधि है; लेकिन कुछ लोगों के लिए यह योग्य पड़ सकती है। खासकर जो लोग ध्वनि के साथ काम करते है। संगीतज्ञ, कवि, जिनके काम बहुत संवेदनशील है, उनके लिए यह विधि सहयोगी हो सकती है। लेकिन दूसरों के लिए जिनके कान संवेदनशील नहीं है, यह विधि कठिन पड़ेगी। क्योंकि यह बहुत सूक्ष्म है।
तो तुम्हें ओम का उच्चारण करना है और इस उच्चारण में तीनों ध्वनियों को—अ, उ और म को महसूस करना है। ओम का उच्चारण करो और उसमें तीन ध्वनियों को—अ, उ और म को अनुभव करो। वे तीनों ओम में समाहित है। बहुत संवेदनशील काम ही इन तीनों ध्वनियों को अलग-अलग सुन सकते है। वे अलग-अलग है, यद्यपि बहुत करीब-करीब भी है। अगर तुम उन्हें अलग-अलग नहीं सुन सकते तो यह विधि तुम्हारे लिए नहीं है। तुम्हारे कानों को उनके लिए प्रशिक्षित करना होगा।

जापान में, विशेषकर झेन परंपरा में, वे पहले कानों को प्रशिक्षित करते है। कानों के प्रशिक्षण के उपाय है। बाहर हवा चल रही है; उसकी एक ध्वनि है। गुरु शिष्य से कहता है कि इस ध्वनि पर अपने कान को एकाग्र करो; उसके सूक्ष्म भेदों को, उसकी बदलाहटों को समझो; देखो कि कब ध्वनि कुपित है और कब उन्मत्त, कब ध्वनि करणावान है और कब प्रेमपूर्ण हे। कब वह शक्तिशाली है। और कब नाजुक है। ध्वनि की बारीकियों को अनुभव करो। वृक्षों से होकर हवा गुजर रही है। उस महसूस करो। नदी बह रही है; उसके सूक्ष्म भेदों को पहिचानों।

और महीनों साधक नदी के किनारे बैठकर उसके कलकल स्वर को सुनता रहता है। नदी का स्वर भी भिन्न-भिन्न होता है। वह सतत बदलता रहता है। बरसात में नदी पूर पर होती है; बहुत जीवंत होती है, उमड़ती होती है। उस समय उसके स्वर भिन्न होते है। और गर्मी में नदी ना कुछ होती है। उसका कलकल भी समाप्त हो जाता है। लेकिन अगर तुम सुनना चाहो तो वह सूक्ष्म स्वर भी सूना जा सकता है। साल भर नदी बदलती रहती है और साधक को सजग रहना पड़ता है।

हरमन हेस के उपन्यास सिद्धार्थ एक माझी के साथ रहता है। नदी है, माझी है और सिद्धार्थ है; उनके अतिरिक्त और कोई नहीं है। और माझी बहुत शांत व्यक्ति है। वह आजीवन नदी के साथ रहता है; वह इतना शांत हो गया है कि कभी-कभार ही बोलता है। और जब भी सिद्धार्थ अकेलापन महसूस करता है, माझी उससे कहता है कि तुम जाओ नदी के किनारे और उसकी कल-कल ध्वनि को सुनो। मनुष्य की बकवास कि बजाएं नदी को सुनना बेहतर है।

और सिद्धार्थ धीरे-धीरे नदी के साथ लयबद्ध हो जाता है। और तब उसे नदी की भाव दशा का बोध होने लगता है। नदी की भाव दशा बदलती रहती है। कभी वह मैत्रीपूर्ण है और कभी नहीं; कभी वह गाती है और कभी रोती-चीखती है; कभी वह हंसती है और कभी उसे उदासी घेर लेती है। और सिद्धार्थ उसके सूक्ष्म से सूक्ष्म भेदों को पकड़ने लगता है। उसके कान नदी के साथ लयबद्ध हो जाते है।

तो हो सकता है, आरंभ में तुम्हें यह विधि कठिन मालूम पड़े। लेकिन प्रयोग करो; ओम का उच्चार करो और उच्चार करते हुए ओम की ध्वनि को अनुभव करो। इसके तीन, ध्वनियों सम्मिलित; ओम तीन स्वरों का समन्वय है। और जब तुम इन तीन स्वरों को अलग-अलग अनुभव कर लो तो उनमें से अ और म को छोड़ दो। तब तुम ओम नहीं कह सकोगे; क्योंकि अ निकल गया, म भी निकल गया। तब तुम ओम नहीं कह सकोगे; क्योंकि अ निकल गया , म भी निकल गया। तब सिर्फ उ बच रहेगा। क्या होगा?

मंत्र असली चीज नहीं है। असली चीज ओम नहीं है और न उसका छोडना है। असली चीज तुम्हारी संवेदनशीलता है। पहले तुम तीन ध्वनियों के प्रति संवेदनशील होते हो, जो कठिन काम है। और जब तुम इतने संवेदनशील हो जाते हो कि तुम उनमें से दो स्वरों को, अ और म को छोड़ सकते हो तो सिर्फ बीच का स्वर बचता है। और इस प्रयत्न में तुम्हारा मन विसर्जित हो जाता है। तुम उसमे इतने तल्लीन हो जाओगे, उसके प्रति इतने अवधान से भरे जाओगे, तुम इतने संवेदनशील हो जाओगे कि विचार विसर्जित हो जाएंगे। और अगर तुम सोच-विचार करते हो तो तुम स्वरों के प्रति संवेदनशील नहीं हो सकते।

यह तुम्हें तुम्हारे सिर से बारह निकालने का परोक्ष उपाय है। बहुत सारे उपाय प्रयोग में लाए गए है। और वे बहुत सरल प्रतीत होते है। तुम्हें आश्चर्य होता है कि इन सरल उपायों से क्या हो सकता है। लेकिन चमत्कार घटित होता है; क्योंकि वे उपाय परोक्ष है। तुम्हारे मन को बहुत सूक्ष्म चीज पर स्थिर किया जा सकता है। इस प्रयत्न में सोच-विचार नहीं चल सकता है। तुम्हारा मन खो जाएगा। और तब किसी दिन अचानक तुम्हें इस बात का पता चलेगा। और तुम चकित रह जाओगे कि क्या हुआ।

झेन में कोआन का, पहेली का प्रयोग होता है। एक बहुत प्रचलित कोआन है जो नए साधकों को दिया जाता है। उन्हें कहा जाता है कि एक हाथ की ताली सुनो। अब ताली तो दो हाथों से बजती है। लेकिन उन्हें कहा जाता है कि एक हाथ से बजने वाली ताली को सुनो।

किसी झेन गुरु की सेवा में एक लड़का रहता था। वह देखता था कि अनेक लोग आते है, गुरु के पैर पर सिर रखते है और कहते है कि हमे बताएं कि हम किस पर ध्यान करें। गुरु उन्हें कोई कोआन दिया करता था। वह लड़का गुरु के छोटे-मोटे काम कर दिया करता था। वह उसकी सेवा में था। उसकी उम्र नौ साल की रही होगी। रोज-रोज साधकों को आते-जाते देखकर वह भी एक दिन बहुत गंभीरता के साथ गुरु के निकट गया और उसके चरणों में सिर रखकर निवेदन किया कि मुझे भी ध्यान करने के लिए कोई कोआन दें।

गुरु हंसा। लेकिन लड़का गंभीर बना रहा। तो गुरु ने उसे कहा कि ठीक है, एक हाथ की ताली सुनने की चेष्टा करो। और जब सुनाई पड़ जाए तो आकर मुझे बताना।

लड़के ने बहुत प्रयत्न किया। रात-रात भर उसे नींद नहीं आई। कुछ दिनों बात वह आकर कहता है मैंने सून ली। वह वृक्षों से गुजरती हवा है। लेकिन गुरु ने पूछा; इसमें हाथ कहा है? जाओ और फिर प्रयत्न करो। ऐसे लड़का रोज आत ही रहा। वह कोई ध्वनि खोज लेता और गुरु को बताता। लेकिन हर बार गुरु कहता कि यह भी नहीं है; और प्रयत्न करो।

फिर एक दिन लड़का गुरु के पास नहीं आया। गुरु ने उसकी बहुत प्रतीक्षा की; लेकिन वह नहीं आया। तब उसने अपने दूसरे शिष्यों से कहा कि जाकर पता करो कि क्या हुआ। गुरु ने कहा कि मालूम होता है कि उसने एक हाथ की ताली सुन ली है। शिष्य गए। लड़का एक वृक्ष के नीचे समाधिस्थ बैठा था—मानों एक नवजात बुद्ध बैठा हो।

उन्होंने लौटकर गुरु को खबर दी। उन्होंने कहा कि हमें उसे हिलाने में डर लगा; वह तो नवजात बुद्ध मालूम होता है। मालूम पड़ता है कि उसने ताली सुन ली। तब गुरु स्वयं आया, उसने लड़के के चरणों में सिर रखा और पूछा: ''क्या तुमने सुना?'' मालूम होता है कि तुमने सुन लिया। लड़के ने स्वीकृति से सिर हिलाते हुए कहा: ''हां, लेकिन वह तो मौन है।

इस लड़के ने कैसे सुना? उसकी संवेदनशीलता विकसित हुई। उसने प्रत्येक ध्वनि को सुनने की चेष्टा की और उसने बहुत अवधान से सुना। उसका अवधान विकसित हुआ। उसकी नींद जाती रही। वह रात भर जाग कर सुनता कि एक हाथ की ताली क्या है। वह तुम्हारे जैसा बुद्धिमान नहीं था। उसने यह सोचा ही नहीं कि एक हाथ की ताली नहीं हो सकती।

वही पहेली तुम्हें दी जाए तो तुम प्रयोग करने वाले नहीं हो। तुम कहोगे कि यह मूढता है; एक हाथ की ताली नहीं हो सकती। लेकिन उस लड़के ने प्रयोग क्या। उसने सोचा कि जब गुरु ने कहा है तो उसमें जरूर कुछ होगा; उसमे श्रम किया। वह सरल था। जब भी उसे लगता है। कि कोई नई चीज है तो वह दौड़ाकर गुरु के पास जाता। इस ढंग से उसकी संवेदनशीलता विकसित होती गई। वह और-और सजग और बोध पूर्ण होता गया। वह एकाग्र हो गया। वह लड़का खोज में लगा था। इसलिए उसका मन विसर्जित हो गया। गुरु ने उससे कहा था कि अगर तुम सोच विचार करते रहोगे। तो तुम चूक जाओगे। कभी-कभी ऐसी ध्वनि होती है कि जो एक हाथ की होती है। इसलिए सजग रहना ताकि चूक न जाओ। और उसने प्रयत्न किया।

एक हाथ की ताली नहीं होती है। लेकिन यह तो संवेदनशीलता को, बोध को पैदा करने का एक परोक्ष उपाय था। और एक दिन अचानक सब कुछ विलीन हो गया। वह इतना अवधान पूर्ण हो गया कि अवधान ही रह गया। वह इतना संवेदनशील हो गया कि संवेदनशीलता ही रह गई। वह इतना बोधपूर्ण हो गया कि बोध ही रह गया। वह सिर्फ बोधपूर्ण था; किसी चीज के प्रति बोधपूर्ण नहीं। और तब उसने कहा: ''मैंने सुन लिया। लेकिन यह तो मौन है, शुन्य है।''

लेकिन इसके लिए तुम्हें सतत और होश पूर्ण होने का अभ्यास करना होगा।

''अ और म के बिना ओम ध्वनि पर मन को एकाग्र करो।''

यह विधि है जो तुम्हें ध्वनि के सूक्ष्म भेदों के प्रति नाजुक भेदों के प्रति सजग बनाती है। इसका प्रयोग करते-करते तुम ओम को भूल जाओगे। न सिर्फ अ गिरेगा। न सिर्फ म गिरेगा। बल्कि किसी दिन तुम भी अचानक खो जाओगे। तब शून्य का, मौन का जन्म होगा। और तब तुम भी किसी वृक्ष के नीचे बैठे नवजात बुद्ध हो जाओगे।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—29

तंत्र-सूत्र—विधि—45 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी नौवीं विधि:

अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।–तंत्र-सूत्र

''अ: से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

कोई भी शब्द जिसका अंत अ: से होता है, उसका उच्चार चुपचाप करो। शब्द के अंत में अ: के होने पर जोर है। क्यो? क्योंकि जि क्षण तुम अ: का उच्चार करते हो, तुम्हारी श्वास बाहर जाती है। तुमने ख्याल नहीं किया होगा। अब ख्याल करना कि जब भी तुम्हारी श्वास बाहर जाती है, तुम ज्यादा शांत होते हो। और जब भी श्वास भीतर जाती है, तुम ज्यादा

तनावग्रस्त होते हो। कारण यह है कि बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु है। और भीतर आने वाली श्वास जीवन है। तनाव जीवन का हिस्सा है। मृत्यु का नहीं। विश्राम मृत्यु का अंग है, मृत्यु का अर्थ है पूर्ण विश्राम। जीवन पूर्ण विश्राम नहीं बन सकता। वह असंभव है। जीवन का अर्थ है तनाव, प्रयत्न; सिर्फ मृत्यु विश्राम पूर्ण है।
तो जब भी कोई व्यक्ति पूरी तरह विश्राम पूर्ण हो जाता है, वह दोनों हो जाता है—बाहर से वह जीवित होता है। और भीतर से मृत। तुम बुद्ध के चेहरे पर जीवन मृत्यु एक साथ देख सकते हो। इसलिए उनके चेहरे पर इतना मौन, इतनी शांति है—मौन और शांति मृत्यु के अंग है।

जीवन विश्राम पूर्ण नहीं है, राम में जब तुम सो जाते हो तो तुम विश्राम में होते हो। इसी लिए पुरानी परंपराएं कहती है कि मृत्यु और नींद समान है। नींद अस्थायी मृत्यु है। और यही कारण है कि रात्रि विश्राम दायी होती है। वह बाहर जाने वाली श्वास है। सुबह भीतर आने वाली श्वास है। दिन तुम्हें तनाव से भर देता है। रात तुम्हें विश्राम से भरती है। प्रकाश तनाव पैदा करता है, अंधकार विश्राम लाता है। यही वजह है कि तुम दिन में नहीं सो सकते। दिन में विश्राम करना कठिन है। प्रकाश जीवन जैसा है, वह मृत्यु विरोधी है। अंधकार मृत्यु जैसा है। वह मृत्यु के अनुकूल है।

तो अंधकार में गहरी विश्रांति है। और जो लोग अंधकार से डरते है, वे विश्राम में नहीं उतर सकते। यह असंभव है।

विश्राम अंधेरे में घटित होता है। और तुम्हारे जीवन के दोनों छोरों पर अंधरा है। जन्म के पहले तुम अंधेरे में होते हो। और मृत्यु के बाद तुम फिर अंधेरे में होते हो। अंधकार असीम है। और यह प्रकाश, यह जीवन उस अंधकार के भीतर एक क्षण जैसा है। अंधकार के समुद्र में प्रकाश लहर जैसा है जो उठता-गिरता रहता है। अगर तुम जीवन के दोनों छोरों को घेरने वाले अंधकार को स्मरण रख सको तो तुम यहीं और अभी विश्राम में हो सकते हो।

जीवन और मृत्यु अस्तित्व के दो छोर हे। भीतर आने वाली श्वास जीवन है, बहार जाने वाली श्वास मृत्यु है। ऐसा नहीं है कि तुम किसी दिन मरोगे, तुम प्रत्येक श्वास के साथ मर रहे हो।

यही कारण है कि हिंदू जीवन को श्वासों की गिनती कहते है, वे उसे वर्षों की गिनती नहीं कहते। तंत्र, योग आदि सभी भारतीय परंपराएं जीवन को श्वासों में गिनती है। वे कहती है कि तुम्हें इतनी श्वासों का जीवन मिला है। वे कहती है कि अगर तुम तेजी से श्वास लोगे, थोड़े समय में ज्यादा श्वासें लोगे तो तुम बहुत जल्दी मरोगे। और अगर तुम बहुत धीरे-धीरे श्वास लोगे, अगर एक निश्चित समय में कम श्वास लोगे तो तुम ज्यादा समय तक जीओगे।

और बात ऐसी ही है। अगर तुम पशुओं का निरीक्षण करोगे तो पाओगे कि बहुत धीमी श्वास लेने वाले पशु लंबी उम्र जीते है। उदाहरण के लिए हाथी है, हाथी की उम्र बड़ी है। क्योंकि उसकी श्वास धीमी चलती है। फिर कुत्ता है, उसकी श्वास तेज चलती है। और उसकी उम्र बहुत कम है। जो भी पशु बहुत तेज श्वास लेता होगा, उसकी उम्र लम्बी नहीं हो सकती। लंबी उम्र सदा धीमी श्वास के साथ जुड़ी है।

तंत्र, योग और अन्य भारतीय साधना पथ तुम्हारे जीवन का हिसाब तुम्हारी श्वासों से लगाते है। सच तो यह है कि तुम हरेक श्वास के साथ जन्मते हो और हरेक श्वास के साथ मरते हो। यह विधि बाहर जाने वाली श्वास को गहरे मौन में उतरने का माध्यम बनाती है। उपाय बनाती है। यह एक मृत्यु-विधि है।

''अ से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

श्वास बाहर गई है—इसलिए अः से अंत होने वाले शब्द का उपयोग है यह अः अर्थपूर्ण है; क्योंकि जब तुम अः कहते हो वह तुम्हें पूरी तरह खाली कर देता है। उसके साथ पूरी श्वास बाहर निकल जाती है। कुछ भी भीतर बची नहीं रहती है। तुम

बिलकुल खाली हो जाते हो—खाली और मृत। एक क्षण के लिए, बहुत थोड़ी देर के लिए जीवन तुमसे बाहर निकल गया है और तुम मृत और खाली हो।

अगर इस रिक्ता इस खाली पन को तुम जान लो। उसके प्रति बोधपूर्ण हो जाओ तो तुम पूर्णतः रूपांतरित हो जाओगे। तुम और ही आदमी हो जाओगे। तब तुम भली भांति जान लोगे कि न यह जीवन तुम्हारा जीवन है और न यह मृत्यु ही तुम्हारी मृत्यु है। तब तुम उसे जान लोगे जो आती-जाती श्वासों के पास है, तब तुम साक्षी आत्मा को जान लोगे। और साक्षित्व उस समय आसानी से घट सकता है जब तुम श्वासों से खाली हो, क्योंकि तब जीवन उतार पर होता है। और सारे तनाव भी उतार पर होते है। तो इस विधि को प्रयोग में लाओ। यह बहुत ही सुंदर विधि है।

लेकिन आमतौर से, सामान्य आदत के मुताबिक, हम सदा भीतर आने वाली श्वास को ही महत्व देते है। हम बाहर जाने वाली श्वास को कभी महत्व नहीं देते। हम सदा भीतर लेते है। उसे बाहर नहीं छोड़ते। हम श्वास लेते है और शरीर उसे छोड़ता है। तुम अपनी श्वसन क्रिया का निरीक्षण करो और तुम्हें यह पता चल जाएगा।

हम सदा श्वास लेते है। हम उसे छोड़ते नहीं। छोड़ने का काम शरीर करता है। और इसका कारण यह है कि हम मृत्यु से भयभीत है। बस यही कारण है। अगर हमारा बस चलता तो हम कभी श्वास को बाहर जाने ही नहीं देते। हम श्वास को भीतर ही रोक रखते। कोई भी व्यक्ति श्वास छोड़ने पर जोर नहीं देता। सब लोग श्वास लेने की ही बात करते है। लेकिन श्वास को भीतर लेने के बाद उसे बाहर निकालना अनिवार्य हो जाता है। इसलिए हम मजबूरी में उसे बाहर जाने देते है। उस हम किसी तरह बरदाश्त कर लेते है। क्योंकि श्वास छोड़े बगैर श्वास लेना असंभव है। इसलिए श्वास छोड़ना आवश्यक बुराई के रूप में स्वीकृत है। लेकिन बुनियादी तौर से श्वास छोड़ने में हमारा कोई रस नहीं है।

और यह बात श्वास के संबंध में ही सही नहीं है। पूरे जीवन के प्रति हमारी दृष्टि यही है। जो भी हमें मिलता है, उसे हम मुट्ठी में बाँध लेते है। उसे छोड़ने का नाम ही नहीं लेते। यही मन का कृपणता है। और याद रहे, इसके बहुत परिणाम होते है। अगर तुम कब्जियत से पीडित हो तो उसका कारण यह है कि तुम श्वास तो लेते हो, लेकिन उसे छोड़ते नहीं। जो व्यक्ति श्वास लेना जानता है। लेकिन छोड़ना नहीं, वह कब्जियत से पीडित होगा। कब्जियत उसी चीज का दूसरा छोर है। वह किसी भी चीज को अपने से बाहर जाने देने के लिए राज़ी नहीं है। वह सिर्फ इकट्ठा करता जाता है। यह भयभीत है और भय के कारण यह इकट्ठा किए जाता है।

लेकिन जो चीज रोक ली जाती है वह विषाक्त हो जाती है। तुम श्वास तो लेते हो लेकिन अगर उसे छोड़ते नहीं तो वह श्वास जहर बन जाएगी और तुम उसके कारण मरोगे। अगर तुमने कंजूसी की तो तुम एक जीवनदायी तत्व को जहर में बदल दोगे। क्योंकि श्वास का बाहर जाना नितांत जरूरी है। बाहर जाती श्वास तुम्हारे भीतर से सब जहर को बाहर निकाल फेंकती है।

तो सच तो यह कि मृत्यु शुद्धि की प्रक्रिया है और जीवन अशुद्धि की, विषाक्त करने की प्रक्रिया है। यह बात विरोधाभासी मालूम पड़ेगी। जीवन विषाक्त करने की प्रक्रिया है, क्योंकि जीने के लिए बहुत सी चीजों को उपयोग में लाना पड़ता है। और जैसे ही तुम उनका उपयोग करते हो। वे विष में बदल जाती है। तब तुम श्वास लेते हो तो तुम आक्सीजन का उपयोग कर रहे हो, लेकिन उपयोग करने के बाद जो चीज बच रहती है वह विष है। आक्सीजन के कारण ही वह जीवन था। लेकिन जब तुमने उसका उपयोग कर लिया तो शेष विष हो जाता है। ऐसे ही जीवन हर चीज को जहर में बदलता रहता है।

मृत्यु शुद्ध की प्रकिया है। जब सारा शरीर विषाक्त हो जाता है। तब मृत्यु तुम्हें उस शरीर से मुक्त कर देती है। मृत्यु तुम्हें फिर से नया बना देती है। तुम्हें नया जन्म दे देगी। तुम्हें नया शरीर मिल जाएगा। मृत्यु के द्वारा शरीर का सब संग्रहीत विष प्रकृति में विलीन हो जाता है। और तुम्हें एक नया शरीर उपलब्ध होता है।

और यह बात प्रत्येक श्वास के साथ घटित होती है। बाहर जाने वाली श्वास मृत्यु के समान है, वह विष को बाहर ले जाती है। और जब वह श्वास बाहर जाती है। तो तुम्हारे भीतर सब कुछ शांत होने लगता है। अगर तुम सारी की सारी श्वास बाहर फेंक दो, कुछ भी भीतर न रहने पाए तो तुम शांति के उस बिंदु को छू लोगे जो श्वास के भीतर रहते हुए कभी नहीं छुआ जा सकता था। यह ज्वार-भाटे जैसा है। आती हुई श्वास के साथ तुम्हारे पास जीवन-ज्वार आती है और जाती हुई श्वास के साथ सब कुछ शांत हो जाता है। ज्वार चला गया तब, तुम खाली, रिक्त सागर तट भर रह जाते हो। इस विधि का यही उपयोग करो।

''अ से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार चुपचाप करो।''

बाहर जाने वाली श्वास पर जोर दो। और तुम इस विधि का उपयोग मन में अनेक परिवर्तन लाने के लिए कर सकते हो। अगर तुम कब्जियत से पीड़ित हो तो श्वास भूल जाओ। सिर्फ श्वास को बहार फेंको। श्वास भीतर ले जाने का काम शरीर को करने दो। तुम छोड़ने भर का काम करो। तुम श्वास को बाहर निकाल दो और भीतर ले जाने की फिक्र ही मत करो। शरीर वह काम अपने आप ही कर लेगा, तुम्हें उसकी चिंता नहीं लेनी है। उससे तुम मर नहीं जाओगे। शरीर ही श्वास को भीतर ले जाएगा। तुम छोड़ने भर का काम करो, शेष शरीर कर लेगा। और तुम्हारी कब्जियत जाती रहेगी।

अगर तुम ह्रदय रोग से पीड़ित हो तो श्वास को बाहर छोड़ो। लेने की फिक्र मत करो। फिर ह्रदय रोग तुम्हें कभी नहीं होगा। अगर सीढ़ियां चढ़ते हुए या कहीं जाते हुए तुम्हें थकावट महसूस हो, तुम्हारा दम घुटने लगे तो तुम इतना ही करो: श्वास को बाहर छोड़ो, लो नहीं। और तब तुम कितनी ही सीढ़ियां चढ़ जाओगे। और नहीं थकोंगे। क्या होता है?

जब तुम श्वास छोड़ने पर जोर देते हो तो उसका मतलब है कि तुम अपने को छोड़ने का, अपने खोने को राज़ी हो। तब तुम मरने को राज़ी हो, तब तुम मृत्यु से भयभीत नहीं हो। और यही चीज तुम्हें खोलती है। अन्यथा तुम बंद रहते हो। भय बंद करता है। जब बंद करता है। जब तुम श्वास छोड़ते हो तो पूरी व्यवस्था बदल जाती है। और वह मृत्यु को स्वीकार कर लेती है। भय जाता रहता है और तुम मृत्यु के लिए राज़ी हो जाते हो।

और वही व्यक्ति जीता है जो मरने के लिए तैयार है। सच तो यह हे कि वही जीता है जो मृत्यु से राज़ी है। केवल वही व्यक्ति जीवन के योग्य है। क्योंकि वह भयभीत नहीं है, जो व्यक्ति मृत्यु को स्वीकार करता है, मृत्यु का स्वागत करता है, मेहमान मानकर उसकी आवभगत करता है। उसके साथ रहता है। वही व्यक्ति जीवन में गहरे उतर सकता है।

जब एक कुत्ता मरता है तो दूसरे कुत्ते को कभी पता नहीं होता की मैं भी मर सकता हूं। जब भी मरता है, कोई दूसरा ही मरता है। तो कोई कुत्ता कैसे कल्पना करे के मैं भी मरने वाला हूं। उसने कभी अपने को मरते नहीं देखा। सदा किसी दूसरे ही मरते है। वह कैसे कल्पना करे, कैसे निष्पति निकाले कि मैं भी मरूंगा। पशु को मृत्यु का बोध नहीं होता। इसलिए कोई पशु संसार का त्याग नहीं करता। कोई पशु संन्यासी नहीं हो सकता है।

केवल एक बहुत ऊंच्ची कोटि की चेतना ही तुम्हें संन्यास की तरफ ले जा सकती है। मृत्यु के प्रति जागने से ही संन्यास घटित होता है। और अगर आदमी होकर भी तुम मृत्यु के प्रति जागरूक नहीं हो तो तुम अभी पशु ही हो। मनुष्य नहीं हुए हो। मनुष्य तो तुम तभी बनते हो जब मृत्यु का साक्षात्कार करते हो। अन्यथा तुममें और पशु में कोई फर्क नहीं है। पशु और मनुष्य में सब कुछ समान है, सिर्फ मृत्यु फर्क लाती है। मृत्यु का साक्षात्कार कर लेने के बाद तुम पशु नहीं रहते। तुम्हें कुछ घटित हुआ है जो कभी किसी पशु को घटित नहीं होता है। अब तुम एक भिन्न चेतना हो।

ऐसा ही इन विधियों के साथ है। वे सरल मालूम होती है। लेकिन वे बुनियादी सत्य को स्पर्श करती है। जब श्वास बाहर जा रही है, जब तुम जीवन से सर्वथा रिक्त हो, तब तुम मृत्यु को छूते हो, तब तुम उसके बहुत करीब पहुंच जाते हो। तब तुम्हारे भीतर सब कुछ मौन और शांत हो जाता है।

इसे मंत्र की तरह उपयोग करो। जब भी तुम्हें थकावट महसूस हो, तनाव महसूस हो तो अः से अंत होने वाले किसी शब्द का उच्चार करो। अल्लाह से भी काम चलेगा। कोई शब्द जो तुम्हारी श्वास को समग्ररतः: से बाहर ले आए। जो तुम्हें श्वास से बिलकुल खाली कर दे। जिस क्षण तुम श्वास से रिक्त होते हो उसी क्षण तुम जीवन से भी रिक्त हो जाते हो।

और तुम्हारी सारी समस्याएं जीवन की समस्याएं है, मृत्यु की कोई समस्या नहीं हे। तुम्हारी चिंताएं, तुम्हारे दुःख-संताप, तुम्हारा क्रोध, सब जीवन की समस्याएं है। मृत्यु तो समस्याहीन है। मृत्यु असमस्या है। मृत्यु कभी किसी को समस्या नहीं देती है। तुम भला सोचते हो कि मैं मृत्यु से डरता हूं, कि मृत्यु समस्या पैदा करती है। लेकिन हकीकत यह है कि मृत्यु नहीं जीवन के प्रति तुम्हारा आग्रह, जीवन के प्रति तुम्हारा लगाव समस्या पैदा करता है। जीवन ही समस्या खड़ी करता है। मृत्यु तो सब समस्याओं का विसर्जन कर देती है।

तो जब श्वास बिलकुल बाहर निकल जाए—अ:sis—तुम जीवन से रिक्त हो गए। उस क्षण अपने भीतर देखो। जब श्वास बिलकुल बाहर निकल जाए। दूसरी श्वास लेने के पहले उस अंतराल में गहरे उतरो जो रिक्त है और उसके आंतरिक मौन और शांति के प्रति सजग होओ। उस क्षण तुम बुद्ध हो।

और अगर तुम उस क्षण को पकड़ लो। तो तुम्हें वह स्वाद मिल जाएगा जिसे बुद्ध ने जाना। और एक बार यह स्वाद जान लिया गया तो फिर तुम उसे आने-जाने वाली श्वास से अलग कर ले सकते हो। फिर श्वास आती-जाती रह सकती है। और तुम चेतना की उस अवस्था में रह सकते हो। वह तो सदा है, फिर उसे उघाड़ना है। और उसे उस समय उघाड़ना आसान होता है जब तुम जीवन से, श्वास से रिक्त होते हो।

और जब श्वास बाहर निकल जाती है, तब सब कुछ निकल जाता है। इस क्षण किसी प्रयास की जरूरत नहीं है। इस क्षण अनायास बिना प्रयास के सजगता को, बोध को उपल्बध हुआ जा सकता हे। मृत्यु के इस क्षण को उपलब्ध होओ। यही वह क्षण है जब तुम द्वार के बिलकुल करीब होते हो, परमात्मा के द्वार के बिलकुल पास होते हो। जो प्रकट है, जा असार है, वह बाहर चला गया; इस क्षण मे तुम लहर नहीं रहे। सागर हो गए। अभी तुम बिलकुल सागर के निकट हो। अगर तुम बोधपूर्ण हो सके, सजग हो सके, तो तुम भूल जाओगे कि मैं लहर हूं। फिर लहर आएगी। लेकिन अब तुम लहर के साथ कभी तादात्म्य नहीं बनाओगे। तुम सागर बने रहोगे। एक बार तुमने जान लिया कि तुम सागर हो, फिर तुम लहर नहीं हो सकते।

जीवन लहर है, मृत्यु सागर है। इस कारण ही बुद्ध इस बात पर जोर देते है कि मेरा निर्वाण मृत्यु वत है। वे कभी नहीं कहते कि तुम अमरत्व को प्राप्त हो जाओगे। वे इतना ही कहते है कि तुम मिटोगे, समग्ररतः: जीसस कहते है; मेरे पास आओ और मैं तुम्हें विराट जीवन दूँगा। बुद्ध कहते है: मेरे पास मिटने के लिए आओ, मैं तुम्हें समग्र मृत्यु दूँगा। और दोनों एक ही बात है। लेकिन बुद्ध की शब्दावली ज्यादा बुनियादी है। मगर तुम उससे भयभीत हो।

यही कारण है कि बुद्ध का भारत में प्रभाव नहीं पड़ सका। उन्हें पूरी तरह उखाड़ फेंका गया। और हम कहे चले जाते है कि भूमि धार्मिक है। लेकिन यहां जो सर्वाधिक धार्मिक पुरूष हुआ उसे यहां हमने जमने नहीं दिया। किस तरह की धार्मिक भूमि है यह? हम दूसरा बुद्ध नहीं पैदा कर सकते। बुद्ध अप्रतिम है। जब भी संसार भारत को धर्म-भूमि के रूप में स्मरण करता है, वह बुद्ध को स्मरण करता है। और किसी को नहीं। बुद्ध के कारण ही भारत धार्मिक समझा जाता है। किसी प्रकार की धर्म-भूमि हे यह। बुद्ध को यहां जगह नहीं मिली उन्हें सर्वथा उखाड़ फेंका गया। कारण यह था कि बुद्ध को यहां जगह नहीं मिली, उन्हें सर्वथा उखाड़ फेंका गया।

कारण यह था कि बुद्ध ने मृत्यु की भाषा उपयोग की। ब्राह्मण जीवन की भाषा उपयोग करते है। वे कहते है ब्रह्म; बुद्ध ने कहा निर्वाण। ब्रह्म का अर्थ जीवन, अनंत जीवन है; और निर्वाण का अर्थ परिसमाप्ति, मृत्यु , समग्र मृत्यु। बुद्ध कहते है कि तुम्हारी सामान्य मृत्यु समग्र नहीं होती। तुम्हें फिर-फिर जन्म लेना होता है। साधारण मृत्यु समग्र नहीं है। तुम पूनः संसार

में आना पड़ता है। बुद्ध कहते थे कि मैं तुम्हें ऐसी समग्र मृत्यु दूँगा। कि तुम्हें फिर कभी जन्म लेने की जरूरत नहीं पड़ेगी। समग्र मृत्यु का अर्थ है कि अब दुबारा जन्म संभव नहीं है।

इसलिए बुद्ध कहते है कि यह तथाकथित मृत्यु-मृत्यु नहीं है। यह विश्राम है, तुम फिर जीवित हो उठते हो। यह मृत्यु तो बाहर गई श्वास जैसी है। तुम फिर श्वास भीतर लोगे। और तुम्हारा पुनः जन्म हो जाएगा। बुद्ध कहते है कि मैं तुम्हें वह उपाय बताता हूं कि बाहर गई श्वास फिर वापस नहीं लौटेंगी। वही समग्र मृत्यु है। निर्वाण है।

''तब हकार में अनायास सहजता को उपलब्ध होओ।''

इसका प्रयोग करो। किसी भी समय यह प्रयोग कर सकते हो। बस या रेलगाड़ी में यात्रा कराते हुए, या अपने आफिस जाते हुए। जब भी तुम्हें समय मिले अल्लाह शब्द बड़ा काम का है—इस कारण नहीं कि वहां आसमान में कोई अल्लाह है। वरन इस अः के कारण। यह शब्द सुंदर है। और जितना कही कोई अल्लाह-अल्लाह कहता है उतना ही वह शब्द छोटा होता जाता है। अल्लाह से वह लाह हो जाता है। और फिर लाह से आह रह जाता है। यह अच्छा है। लेकिन तुम अः से अंत होने वाले किसी भी शब्द को काम में ला सकते हो, केवल अः से भी चलेगा।

तुमने देखा होगा कि जब भी तुम तनाव से भरते हो, तुम एक आह भरकर हलके हो जाते हो। या जब तुम खुशी से भरते हो, बहुत खुशी से, तब तुम अहा कहते हो और पूरी श्वास बाहर निकल जाती है। और तुम अपने भीतर एक अपूर्व शांति अनुभव करते हो। इसे प्रयोग करो। जब तुम खूब प्रसन्न हो तो श्वास अंदर लो और देखो कि क्या होता है। तुम स्वस्थ अनुभव नहीं करोगे। जितना अहा कहने से करते हो। वह फर्क श्वास के कारण है।

भाषाएं अलग-अलग है, लेकिन ये दो चीजें सभी भाषाओं में समान हे। सारी धरती पर जहां भी कोई थकावट अनुभव करता है वह आह करता है। दरअसल वह मृत्यु को बुलाकर कहता है कि मुझे विश्राम दो। और जब वह आहलादित होता है। आनंदित होता है, तब वह अहा कहता है। वह आनंद से इतना पूरित है कि वह मृत्यु से नहीं डरता। वह अपने को पूरी तरह छोड़ने को खोने को राज़ी है।

और अगर तुम इस विधि का निरंतर प्रयोग करते रहो तो उसके गहरे परिणाम होंगे। तब तुम्हारे भी जो सहज है, तुम उसके बोध से भर जाओगे। तब तुम अपनी सहजता को उपलब्ध हो जाओगे। तुम सहज ही हो, लेकिन तुम जीवन से इतने बंधे हो, ग्रस्त हो कि उसके पीछे खड़ी सहज सत्ता से अपरिचित रह जाते हो। लेकिन तब तुम जीवन से, आने वाली श्वास से ग्रस्त नही हो, तब वह सहज सत्ता प्रकट होती है। तब उसकी झलक मिलती है। और धीरे-धीरे वह झलक उपलब्धि में बदल जाती है। तुम्हारी सिद्धि बन जाएगी।

और तुमने उसे एक बार जान लिया तो फिर तुम उसे भुला नहीं सकोगे। वह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसे तुम निर्मित करते हो। वह स्वाभाविक है, सहज है; उसे बनाना नहीं , उघाड़ना भर है। वह तो है ही, तुम भूल गए हो। बस स्मरण करना है, उघाड़ना है।

शरीर अपने विवेक से चलता है। वह उतना ही ग्रहण करता है जितना जरूरी है। जब उसे ज्यादा की जरूरत होती है तो वैसी स्थिति बना लेता है और कम की जरूरत होती है तो वैसी ही स्थिति बना लेता है। शरीर कभी अति पर नहीं जाता है। वह सदा संतुलित रहता है। जब तुम श्वास लेते हो तब वह संतुलित नहीं है। क्योंकि तुम्हें नहीं मालूम है कि शरीर की जरूरत क्या है। और यह जरूरत क्षण-क्षण बदलती रहती है।

इसलिए शरीर को मौका दो, तुम तो बस श्वास छोड़ने भर का काम करो, उसे बाहर फेंको। और तब शरीर खुद श्वास लेने का काम कर लेगा। और शरीर जब खुद श्वास अंदर लेता है तो वह धीरे-धीरे लेता है। और गहरे लेता है। और पेट तक ले जाता है। वह श्वास ठीक नाभि-केंद्र पर चोट करती है। जिससे तुम्हारा पेट ऊपर नीचे होता है। और अगर श्वास लेने का काम भी तुम करोगे तो फिर समग्रता से श्वास छोड़ ने सकोगे। तब श्वास भीतर बची रहेगी। और उपर से ली गई श्वास गहराई में न उतर सकेगी। इसीलिए श्वास क्रिया उथली हो जाती है। तुम श्वास भीतर लेते रहते हो और भीतर जहर इकट्ठा होता जाता है।

वे कहते है कि तुम्हारे फेफड़े में कई हजार छिद्र है। और उनमें से सिर्फ दो हजार छिद्रों तक ही श्वास पहुंच पाती है। बाकी चार हजार छिद्र तो सदा ज़हरीली गैस से भरे रहते है। जिन्हें सदा खाली करने की जरूरत है। वह जो तुम्हारी छाती का दो तिहाई हिस्सा जहर से भरा रहता है। वह तुम्हारे शरीर में मन में दुःख और चिंता और संताप लाता है।

बच्चा सदा श्वास छोड़ता है लेता नहीं। लेने का काम सदा शरीर करता है। जब बच्चा जन्म लेता है तो वह जो पहला काम करता है वह रोना है। उसे रोने के साथ ही उसका कंठ खुलता है। रोने के साथ ही वह पहल अः बोलता है, उस रोने के साथ ही मां के द्वारा भीतर ली गई हवा बाहर निकल जाती है। वह उसकी पहल श्वास क्रिया है। श्वास क्रिया का आरंभ।

बच्चा सदा श्वास छोड़ता है। और जब बच्चा श्वास लेने लगे, जब उसका जोर छोड़ने से हटकर लेने पर चला जाए तो सावधान हो जाना; तब बच्चा बूढ़ा होने लगा। उसका अर्थ है कि बच्चे ने वह तुमसे सीखा है, वह तनावग्रस्त हो गया है।

जब तुम तनाव ग्रस्त होते हो तो तुम गहरी श्वास नहीं ले सकते हो। क्यों? तब तुम्हारा पेट सख्त होता है। जब तुम तनाव में होते हो तो तुम्हारा पेट सख्त हो जाता है। वह सख्ती श्वास को गहरे नहीं जाने देती। तब तुम उथली श्वास ही लेने लगते हो।

अः का प्रयोग करो। वह तुम्हारे चारो और एक सुंदर भाव निर्मित करता है। जब भी तुम थकावट महसूस करो, अः कहकर श्वास को बाहर फेंको। और श्वास छोड़ने पर बल दो। तुम भिन्न ही आदमी होगे और एक भिन्न ही मन विकसित होगा। श्वास लेने पर जोर देकर तुमने कंजूस मन और कंजूस शरीर विकसित किए है। श्वास छोड़ने पर बल देकर वह कंजूसी विदा हो जाएगी। और उसके साथ ही अन्य अनेक समस्याएं विदा हो जाएंगी। तब दूसरे पर मलकियत करने का भाव तिरोहित हो जायेगा।

तो तंत्र यह नहीं कहता है कि मलकियत का भाव छोड़ो, तंत्र कहता है कि अपने श्वास-प्रश्वास का ढंग बदल दो और मलकियत अपने आप छूट जायेगी। तुम अपनी श्वास को देखो, अपने भावों को देखो और तुम्हें बोध हो जाएगा। जो भी गलत है वह भीतर जाने वाली श्वास को महत्व देने के कारण है और जो भी शुभ है ओर सत्य है , शिव है, और सुंदर है। वह बाहर जाने वाली श्वास के साथ संबंधित है। जब तुम झूठ बोलते हो, तुम अपनी श्वास को रोक रखते हो, और जब सच बोलते हो तो श्वास को कभी नहीं रोकते। झूठ बोलते समय तुम्हें डर लगता है और उस डर के कारण तुम श्वास को रोक रखते हो। तुम्हें यह डर भी होता है कि बाहर जाने वाली श्वास के साथ कही छिपाया गया सत्य भी प्रकट न हो जाये।

इस अः का ज्यादा से ज्यादा प्रयोग करो और तुम शरीर और मन से ज्यादा स्वस्थ रहोगे। और तुम्हें एक विशेष ढंग की शांति और विश्राम का अनुभव होगा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—31

तंत्र-सूत्र—विधि—46 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी दसवीं विधि:

’कानों को दबाकर और गुदा को सिकोड़कर बंद करो,

‘’कानों को दबाकर और गुदा को सिकोड़कर बंद करो, और ध्वनि में प्रवेश करो।‘’

हम अपने शरीर से भी परिचित नहीं है। हम नहीं जानते कि शरीर कैसे काम करता है और उकसा ताओ क्या है। ढंग क्या है। मार्ग क्या है। लेकिन अगर तुम निरीक्षण करो तो आसानी से उसे जान सकते हो।

अगर तुम अपने कानों को बंद कर लो और गुदा को ऊपर की और सिकोड़ो तो तुम्हारे लिए सब कुछ ठहर जायेगा। ऐसा लगेगा कि सारा संसार रूक गया। ठहर गया है। गतिविधियां ही नहीं, तुम्हें लगेगा कि समय भी ठहर गया है। जब तुम गुदार को ऊपर खींचकर सिकोड़ लेते हो। क्या होता है ऐसा? अगर दोनों कान बंद कर लिए जाएं तो बंद कानों से तुम अपने भीतर एक ध्वनि सुनोंगे। लेकिन अगर गदा को ऊपर खींचकर नहीं सिकुड़ा जाए तो वह ध्वनि गुदा-मार्ग से बहार निकल जाती है। वह ध्वनि बहुत सूक्ष्म है। अगर गुदा को ऊपर खींचकर सिकोड़ लिया जाए और कानों को बंद किया जाए तो तुम्हारे भीतर एक ध्वनि का स्तंभ निर्मित होगा। और वह ध्वनि मौन की ध्वनि होगी। वह नकारात्मक ध्वनि है। जब सब ध्वनियां समाप्त हो जाती है। तब तुम्हें मौन की ध्वनि या निध्वनि का एहसास होता है। लेकिन वह निर्ध्वनि गुदा से बहार निकल जाती है। इसलिए कानों को बंद करो और गुदा को सिकोड़ लो। तब तुम दोनों और से बंद हो जाते हो। तुम्हारा शरीर भी बंद हो जाता है। और ध्वनि से भर जाता है। ध्वनि से भरने का यह भाव गहन संतोष को जन्म देता है। इस संबंध में बहुत सी चीजें समझने जैसी है। और तभी तुम उसे समझ सकोगे जो घटित होता है।

हम अपने शरीर से परिचित नहीं है। साधक के लिए यह एक बुनियादी समस्या है। और समाज शरी से परिचय के विरोध में है। क्योंकि समाज शरीर से भयभीत है। हम हरेक बच्चे को शरीर से अपरिचित रहने की शिक्षा देते है। हम उसे संवेदन शून्य बना देते है। हम बच्चे के मन और शरीर के बीच एक दूरी पैदा कर देते है। ताकि वह अपने शरीर से ठीक से परिचित न हो जाए। क्योंकि शरीर बोध समाज के लिए समस्या पैदा करेगा।

इमें बहुत सी चीजें निहित है। अगर बच्चा शरीर से परिचित है तो वह देर-अबेर काम या सेक्‍स से भी परिचित हो जाएगा। अगर वह शरीर से बहुत ज्यादा परिचित हो जाएगा तो वह अपना कामुक और इंद्रियोन्मुख अनुभव करेगा। इसलिए हमें उसकी जड़ को ही काट देना है। हम बच्चे को उसके शरीर के प्रति जड़ और संवेदन शुन्य बना देते है। ताकि उसे उसका एहसास न हो। तुम्हें तुम्हारे शरीर का एहसास ही नहीं होता। हां, जब किसी उपद्रव में पड़ता है तो ही उसका एहसास होता है।

तुम्हारे सिर में दर्द होता है तो तुम्हें सिर का पता चलता है। जब पाँव में कांटा गड़ता है तो पाव का पता चलता है। और जब शरीर में दर्द होता है तो तुम जानते हो कि मेरा शरीर भी है। जब शरीर रूग्‍ण होता है तो ही उसका पता चलता है। लेकिन वह भी शीध्र नहीं। तुम्हें अपने रोगों का पता भी तुरंत नहीं चलता है। कुछ समय बीतने पर ही पता चलता है। जब रोग तुम्हारी चेतना के द्वार पर बार-बार दस्‍तक देता है। जब पता चलता है। यही कारण है कि कोई भी व्यक्ति समय रहते डाक्‍टर के पास नहीं पहुंचता है। वह देर कर के पहुंचता है। जब रोग गहन हो चूका होता है। और वह अपनी बहुत हानि कर चूका होता है।

इस लिए समस्याएं पैदा होती है—विशेषकर तंत्र के लिए। तंत्र गहन संवेदनशीलता और शरीर के बोध में भरोसा करता है।

तुम अपने काम में लगे हो और तुम्हारा शरीर बहुत कुछ कर रहा है, जिसका तुम्हें कोई बोध नहीं है। अब तो शरीर की भाषा पर बहुत काम हो रहा है। शरीर की अपनी भाषा है। और मनोचिकित्सकों और मानस्‍विद को शरीर की भाषा का प्रशिक्षण दिया जा रहा है। क्योंकि वे कहते है कि आधुनिक मनुष्य का भरोसा नहीं किया जा सकता। आधुनिक मनुष्य जो कहता है उस पर भरोसा नहीं किया जा सकता। उससे अच्छा है उसके शरीर का निरीक्षण करना क्योंकि शरीर उसके बारे में ज्यादा खबर रखता है।

विलहेम रेख ने शरीर की संरचना पर बहुत काम किया है। और उसे शरीर और मन के बीच बहुत गहरा संबंध दिखाई दिया है। यदि कोई आदमी भयभीत है तो उसका पेट कोमल नहीं होगा। तुम उसका पेट छुओ और वह पत्‍थर जैसा होगा। और अगर वह निडर हो जाए तो उसका पेट छुओ तो वह तुरंत शिथिल हो जाएगा। या अगर पेट को शिथिल कर लो तो भय चला जाएगा। पेट पर थोड़ी मालिश करो और तुम देखोगें कि डर कम हो गया। निर्भयता आई। जो व्यक्ति प्रेमपूर्ण है। उसके शरीर का गुण धर्म और होगा। उसके शरीर में उष्णता होगी, जीवन होगा। और जो व्यक्ति प्रेम पूर्ण नहीं होगा उसका शरीर ठंडा होगा।

यही ठंडापन और अन्‍य चीजें तुम्हारे शरीर में प्रविष्‍ट हो गई है। और वे ही बाधाएं बन गई है। वे तुम्हें तुम्हारे शरीर को नही जानने देती है। लेकिन शरीर अपने ढंग से अपना काम करता रहता है। और तुम अपने ढंग से अपना काम करते रहते हो। दोनों के बीच एक खाई पैदा हो जाती है। उस खाई को पाटना है।

मैंने देखा है अगर कोई व्यक्ति दमन करता है, अगर तुम क्रोध को दबाते हो तो तुम्हारे हाथों में, तुम्हारी अंगुलियों में दमित क्रोध की उतैजना होगी। और जो जानता है वह तुम्हारे हाथों को छूकर बता देगा कि तुमने क्रोध को दबाया है।

अगर तुमने कामवासना को दबाया है तो वह कामवासना तुम्हारे काम-अंगों में दबी पड़ी रहेगी। ऐसी किसी अंग को छूकर बताया जा सकता है। यहां काम दमित पडा है। वह अंग भयभीत हो जाएगा। और तुम्हारे स्पर्श से बचना चाहेगा। वह खुला या ग्रहणशील नहीं रहेगा। चूंकि तुम बचना चाहते हो इसलिए वह अंग भी संकुचित हो जाएगा। वह तुम्हें द्वार नहीं देगा।

अब वे कहते है कि पचास प्रतिशत स्त्रियां ठंडी है, उनकी कामवासना को उतेजित नहीं किया जा सकता। और कारण यह है कह हम लड़कों से बढ़ कर लड़कियों को काम दमन सिखाते है। लड़कियां बहुत दमन करती है। और जब वे बीस वर्ष की उम्र तक करती है तो उसकी लंबी आदत बन जाती है। बीस वर्षो का दमन। फिर जब वह प्रेम करेगी तो वह प्रेम की बात ही करेगी, प्रेम के प्रति उसका शरीर उन्मुख नहीं होगा। नहीं खुलेगा। उनका शरीर एक तरह से सेक्‍स के प्रति बंद जो जाता है। जड़ हो जाता है। और तब एक सर्वथा विरोधपूर्ण घटना घटती है। उसके भीतर परस्‍पर विरोधी दो धाराएं एक साथ बहती है। वह प्रेम

करना चाहती है, लेकिन उसका शरीर दमित है। शरीर असहयोग करता है। शरीर पीछे हटने लगता है। वह पास आने को तैयार नहीं होता।

अगर तुम किसी स्त्री को किसी पुरूष के पास बैठे देखो और अगर वह स्त्री पुरूष को प्रेम करती है तो तुम पाओगे कि वह स्त्री उस पुरूष की तरफ झुककर बैठी है। अगर स्त्री पुरुष से डरती है तो उसका शरीर उसके विपरीत दिशा में झुका होगा। अगर स्त्री पुरूष के प्रेम में है तो वह अपनी टांगों को एक दूसरे पर रख नहीं बैठेगी। वह ऐसा तभी करेगी जब वह पुरूष से भयभीत होगी। उसे इस बात की खबर नहीं है, वह अनजाने कर रही है। शरीर अपना बचाव आप करता है, वह अपने ढंग से अपना काम करता है।

तंत्र को पहले से इस बात का बोध था, सब से पहले तंत्र को ही शरीर के तल पर ऐसी गहरी संवेदनशीलता का पता चला था। और तंत्र कहता है कि अगर तुम सचेतन रूप से अपने शरीर का उपयोग कर सको तो शरीर ही आत्मा में प्रवेश का साधन बन जाता है। तंत्र कहता है कि शरीर का विरोध करना मूढ़ता है, बिलकुल मूढता है। शरीर का उपयोग करो, शरीर माध्यम है। और इसकी उर्जा का उपयोग इस भांति करो कि तुम इसका अतिक्रमण कर सको।

''अब कानों का दबाकर और गुदा को सिकोड़कर बंद करों। और ध्वनि में प्रवेश करो।''

तुम अपने गुदा को अनेक बार सिकोड़ते रहे हो, और कभी-कभी तो गुदा-मार्ग अनायास भी खुल जाता है। अगर तुम्हें अचानक कोई भय पकड़ जाये, तो तुम्हारा गुदा मार्ग खुल जाता है। भय के कारण अचानक मलमूत्र निकल जायेगा। क्या होता है? भय में क्या होता है? भय तो मानसिक चीज है, फिर भय में पेशाब क्यों निकल जाता है। नियंत्रण क्या जाता रहता है? जरूर ही कोई गहरा संबंध होना चाहिए?

भय सिर में, मन में घटित होता है। जब तुम निर्भय होते हो तो ऐसा कभी नहीं होता असल में बच्चे का अपने शरीर पर कोई मानसिक नियंत्रण नहीं होता। कोई पशु अपने मल मूत्र का नियंत्रण नहीं कर सकता है। जब भी मलमूत्र भर जाता है, वह अपने आप ही खाली हो जाता है। पशु उस पर नियंत्रण नहीं करता है। लेकिन मनुष्य को आवश्यकतावश उस पर नियंत्रण करना पड़ता है। हम बच्चे को सिखाते है कि कब उसे मल-मूत्र त्याग करना चाहिए। हम उसके लिए समय बाँध देते है। इस तरह मन एक ऐसे काम को अपने हाथ में ले लेता है। जो स्वैच्छिक नहीं है। और यही कारण है कि बच्चे को मलमूत्र विसर्जन का प्रशिक्षण देना इतना कठिन होता है।

अब मानस्विद कहते है कि अगर मलमूत्र विसर्जन का प्रशिक्षण बंद कर दिया जाए तो मनुष्य की हालत बहुत सुधर जाएगी। बच्चे का, उसकी स्वाभाविकता का, सहजता कास पहल दमन मलमूत्र-विसर्जन के प्रशिक्षण में होता है। लेकिन इन मनस्विदों की बात मानना कठिन मालूम पड़ता है। कठिन इसलिए मालूम पड़ता है। क्योंकि तब बच्चे बहुत सी समस्याएं खड़ी कर देंगे। केवल समृद्ध समाज, अत्यंत समृद्ध समाज ही इस प्रशिक्षण के बिना काम चला सकता है। गरीब समाज को इसकी चिंता लेनी ही पड़ेगी। बच्चे जहां चाहे पेशाब करें, यह हम कैसे बरदाश्त कर सकते है। तब तो यह सोफा पर ही पेशाब करेगा। और यह हमारे लिए बहुत खर्चीला पड़ेगा। तो प्रशिक्षण जरूरी हे। और यह प्रशिक्षण मानसिक है, शरीर में इसकी कोई अंतर्निहित व्यवस्था नहीं है। ऐसी कोई शरीर गत व्यवस्था नहीं है। जहां तक शरीर का संबंध है। मनुष्य पशु ही है। और शरीर को संस्कृति से, समाज से कुछ लेना देना नहीं है।

यही कारण है कि जब तुम्हें गहन भय पकड़ता है तो यह नियंत्रण जाता रहता है। जो शरीर पर लादी गई है, ढीली पड़ जाती है। तुम्हारे हाथ से नियंत्रण जाता रहता है। सिर्फ सामान्य हालातों में यह नियंत्रण संभव है। असामान्य हालातों में तुम नियंत्रण नहीं रख सकते हो। आपात स्थितियों के लिए तुम्हें प्रशिक्षित नहीं किया गया है। सामान्य दिन-चर्या के कामों के लिए ही

प्रशिक्षित किया गया है। आपात स्थिति में यह नियंत्रण विदा हो जाता है, तब तुम्हारा शरीर अपने पाशविक ढंग से काम करने लगता है।

लेकिन इसमें एक बात समझी जा सकती है कि निर्भीक व्यक्ति के साथ ऐसा कभी नहीं होता। यह तो कायरों का लक्षण है। अगर डर के कारण तुम्हारा मल-मूत्र निकल जाता है। तो उसका मतलब है कि तुम कायर हो। निडर आदमी के साथ ऐसा कभी नहीं हो सकता, कयोंकि निडर आदमी गहरी श्वास लेता है। उसके शरी और श्वास प्रश्वास के बीच एक तालमेल है, उनमें कोई अंतराल नहीं है। कायर व्यक्ति के शरीर और श्वास प्रश्वास के बीच एक अंतराल होता है। और इस अंतराल के कारण वह सदा मल-मूत्र से भरा होता है। इसलिए जब आपात स्थिति पैदा होती है तो उसका मल-मूत्र बाहर निकल जाता है।

और इसका एक प्राकृतिक करण यह भी है कि मल-मूत्र निकलने से कायर हल्का हो जाता है। और वह आसानी से भाग सकता है। बच सकता है। बोझिल पेट बाधा बन सकता है। इसलिए कायर के लिए मल-मूत्र का निकलना सहयोगी होता है।

मैं यह बात क्या कह रहा हूं, मैं यह इसलिए कह रहा हूं क्योंकि तुम्हें अपने मन और पेट की प्रक्रियाओं से परिचित होना चाहिए। मन और पेट में गहरा अंतर् संबंध है। मानस्विद कहते है कि तुम्हारे पचास से नब्बे प्रतिशत सपने पेट की प्रक्रियाओं के कारण घटते है। अगर तुमने ठूस-ठूस कर खाया है, तो तुम दुख स्वप्न देखे बिना नहीं रह सकते। ये दुःख स्वप्न मन से नहीं, पेट से आते है।

बहुत से सपने बाहरी आयोजन के द्वारा पैदा किए जा सकते है। अगर तुम नींद में हो और तुम्हारे हाथों को मोड़कर सीने पर रख दिया जाए तो तुम तुरंत दुःख स्वप्न देखने लगोगे। अगर तुम्हारी छाती पर सिर्फ एक तकिया रख दिया जाए तो तुम सपना देखोगें कि कोई राक्षस तुम्हारी छाती पर बैठा है और तुम्हें मार डालने पर उतारू है।

यह विचारणीय है कि एक छोटे से तकिये का भार इतना ज्यादा क्यों हो जाता है। यदि तुम जागे हुए हो तो तकिया कोई भार नहीं है। तुम्हें एक भार नहीं महसूस होता है। लेकिन क्या बात है कि नींद में छाती पर रखा गया एक छोटा सा तकिया भी चट्टान की तरह भारी मालूम पड़ता है। इतना भार क्यों मालूम पड़ता है?

कारण यह है कि जब तुम जागे हुए हो तो तुम्हारे शरीर और मन के बीच तालमेल नहीं रहता है, उनमें एक अंतराल रहता है। तब तुम शरीर और उसकी संवेदनशीलता को महसूस नहीं कर सकते। नींद में नियंत्रण संस्कृति, संस्कार, सब विसर्जित हो जाते है और तुम फिर से बच्चे जैसे हो जाते हो और तुम्हारा शरीर संवेदनशील हो जाता है। उसी संवेदनशीलता के कारण एक छोटा सा तकिया भी चट्टान जैसा भारी मालूम पड़ता है। संवेदन शीलता के कारण भार अतिशय हो जाता है। अनंत गुना हो जाता है।

तो मन और शरीर की प्रक्रियाएं आपस में बहुत जुड़ी हुई है। और यदि तुम्हें इसकी जानकारी हो तो तुम इसका उपयोग कर सकते हो।

गुदा को बंद करने से, ऊपर खींचने से, सिकोड़ने से शरीर में ऐसी स्थिति बनती है। जिसमें ध्वनि सुनी जा सकती है। तुम्हें अपने शरी के बंद धेरे में, मौन में, ध्वनि का स्तंभ सा अनुभव होगा। कानों को बंद कर लो और गुदा को ऊपर की और सिकोड़ लो और फिर अपने भी जो हो रहा हो उसके साथ रहो। कान और गुदा को बंद करने से जो रिक्त स्थिति बनी है उसके साथ बस रहो। ध्वनि तुम्हारे कानों के मार्ग से या गुदा के मार्ग से बाहर जाती है। उसके बाहर जाने के ये ही दो मार्ग है। इसलिए अगर उनका बहार जाना न हो तो तुम उसे आसानी से महसूस कर सकते हो।

और इस आंतरिक ध्वनि को अनुभव करने से क्या होता है। इस आंतरिक ध्वनि को सुनने के साथ ही तुम्हारे विचार विलीन हो जाते है। दिन में किसी भी समय यह प्रयोग करो: गुदा को ऊपर खींचो और कानों को अंगुलि के बंद कर लो। कानों को बंद करो और गुदा को सिकोड़ लो, तब तुम्हें एहसास होगा कि मेरा मन ठहर गया है। उसने काम करना बंद कर दिया है और विचार भी ठहर गए है। मन में विचारों का जो सतत प्रवाह चलता है, वह विदा हो गया है। यह शुभ है।

और जब भी समय मिले इसका प्रयोग करते रहो। अगर दिन में पाँच-छह दफे इसका दिन भर सुन सकते हो। तब बाजार के शोरगुल में भी, सड़क के शोरगुल में भी—यदि तुमने उस ध्वनि को सुना है—वह तुम्हारे साथ रहेगी। और फिर तुम्हें कोई भी उपद्रव अशांत नहीं करेगा। अगर तुमने यह अंतर् ध्वनि सुन ली तो बाहर की कोई चीज तुम्हें विचलित नहीं कर सकती है। तब तुम शांत रहोगे। जो भी आस-पास घटेगा उससे कोई फर्क नहीं पड़ेगा।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—2

प्रवचन—31

तंत्र-सूत्र—विधि—47 (ओशो)

ध्वनि-संबंधी अंतिम विधि:

'अपने नाम की ध्वनि में प्रवेश करो, ओशो

''अपने नाम की ध्वनि में प्रवेश करो, और उस ध्वनि के द्वारा सभी ध्वनियों में।''

मंत्र की तरह नाम का उपयोग बहुत आसानी से किया जा सकता है। यह बहुत सहयोगी होगा, क्योंकि तुम्हारा नाम तुम्हारे अचेतन में बहुत गहरे उतर चुका है। दूसरी कोई भी चीज अचेतन की उस गहराई को नहीं छूती है। यहां हम इतने लोग बैठे है। यदि हम सभी सो जाएं और कोई बाहर से आकर राम को आवाज दे तो उस व्यक्ति के सिवाय जिसका नाम राम है, कोई भी उसे नहीं सुनेगा। राम उसे सुन लेगा। सिर्फ राम की नींद में उससे बाधा पहुँचेगी। दूसरे किसी को भी राम की आवाज सुनाई नहीं देगी।

लेकिन एक आदमी क्यों सुनता है? कारण यह है कि यह नाम उसके गहरे अचेतन में उतर गया है। अब यह चेतन नहीं है, अचेतन बन गया है। तुम्हारा नाम तुम्हारे बहुत भीतर तक प्रवेश कर गया है। तुम्हारे नाम के साथ एक बहुत सुंदर घटना घटती है। तुम कभी अपने को अपने नाम से नहीं पुकारते हो। सदा दूसरे तुम्हारा नाम पुकारते है। तुम अपना नाम कभी नहीं लेते, सदा दूसरे लेते है।

मैंने सूना है कि पहले महायुद्ध में अमेरिका में पहली बार राशन लागू किया गया। थॉमस एडीसन महान वैज्ञानिक था, लेकिन क्योंकि गरीब था इसलिए उसे भी अपने राशन कार्ड के लिए कतार में खड़ा होना पडा। और वह इतना बड़ा आदमी था कि कोई उसके सामने उसका नाम नहीं लेता था। और उसे खूद कभी अपना नाम लेने की जरूरत नहीं पड़ती थी। और दूसरे लोग उसे इतना आदर करते थे कि उसे सदा प्रोफेसर कहकर पुकारते थे। तो एडीसन को अपना नाम भूल गया।

वह क्यू में खड़ा था। और जब उसका नाम पुकारा गया तो वह ज्यों का त्यों चुप खड़ा रहा। क्यू में खड़े दूसरे व्यक्ति ने, जो एडीसन का पड़ोसी था, उसने कहा कि आप चुप क्यों खड़े है। आपका नाम पुकारा जा रहा है। तब एडीसन को होश आया। और उसने कहा कि मुझे तो कोई भी एडीसन कहकर नहीं पुकारता है, सब मुझे प्रोफेसर कहते है। फिर मैं कैसे सुनता। अपना नाम सुने हुए मुझे बहुत समय हो गया है।

तुम कभी आना नाम नहीं लेते हो। दूसरे तुम्हारा नाम लेते है। तुम उसे दूसरों के मुंह से सुनते हो। लेकिन अपना नाम अचेतन में गहरा उतर जाता है—बहुत गहरा। वह तीर की तरह अचेतन में छिद जाता है। इसलिए अगर तुम अपने ही नाम का उपयोग करो तो वह मंत्र बन जाएगा। और दो कारणों से अपना नाम सहयोगी होता है।

एक कि जब तुम अपना नाम लेते हो—मान लो कि तुम्हारा नाम राम है और तुम राम-राम कहे जाते हो—तो कभी तुम्हें अचानक महसूस होगा कि मैं किसी दूसरे का नाम ले रहा हूं। कि यह मेरा नाम नहीं है। और अगर तुम यह भी समझो कि यह मेरा नाम है तो भी तुम्हें ऐसा लगेगा कि मेरे भीतर कोई दूसरा व्यक्ति है जो इस नाम का उपयोग कर रहा है। यह नाम शरीर का हो सकता है। मन का हो सकता है। लेकिन जो राम-राम कह रहा है वह साक्षी है।

तुमने दूसरों के नाम पुकारें है। इसलिए जब तुम अपना नाम लेते हो तो तुम्हें ऐसा लगता है कि यह नाम किसी और का है। मेरा नहीं। और यह घटना बहुत कुछ बताती है। तुम अपने ही नाम के साक्षा हो सकते हो। और इस नाम के साथ तुम्हारा समस्त जीवन जुड़ा है। नाम से प्रथक होते ही तुम अपने पूरे जीवन में पृथक हो जाते हो। और यह नाम तुम्हारे गहरे अचेतन में चला जाता है। क्योंकि तुम्हारे जन्म से ही लोग तुम्हें इस नाम से पुकारते है। तुम सदा-सदा इसे सुनते रहे हो। तो इस नाम का उपयोग करो। इस नाम के साथ तुम उन गहराइयों को छू लोगे जहां तक यह नाम प्रवेश कर गया है।

पुराने दिनों में हम सबको परमात्मा के नाम दिया करते थे। कोई राम कहलाता था, कोई नारायण कहलाता था। कोई कृष्ण कहलाता था। कोई विष्णु कहलाता था। कहते है कि मुसलमानों के सभी नाम परमात्मा के नाम है। और पूरी धरती पर यही रिवाज था कि परमात्मा के नाम के आधार पर हम लोगों के नाम रखते थे। और इसके पीछे कारण थे।

एक कारण तो यही विधि था। अगर तुम अपने नाम को मंत्र की तरह उपयोग करते हो तो इसके दोहरे लाभ हो सकते है। एक तो यह तुम्हारा अपना नाम होगा, जिसको तुमने इतनी बार सुना है। जीवन भर सुना है और जो तुम्हारे अचेतन में प्रवेश कर गया है। फिर यही परमात्मा का नाम भी है। और जब तुम उसको दोहराओगे तो कभी अचानक तुम्हें बोध होगा, कि यह नाम मुझसे पृथक है। और फिर धीरे-धीर उस नाम की अलग पवित्रता निर्मित होगी। महिमा निर्मित होगी। किसी दिन तुम्हें स्मरण होगा कि यह तो परमात्मा का नाम है। तब तुम्हारा नाम मंत्र बन गया है। तो इसका उपयोग करो। यह बहुत ही अच्छा है।

तुम अपने नाम के साथ कई प्रयोग कर सकते हो। अगर तुम सुबह पाँच बजे जागना चाहते हो तो तुम्हारे नाम से बढ़कर कोई अलार्म नहीं है। वह ठीक तुम्हें पाँच बजे जगा देगा। बस अपने भीतर तीन बार कहो: राम, तुम्हें ठीक पाँच बजे जाग जाना है। तीन बार कहकर तुरंत सो जाओ। तुम पाँच बजे जाग जाओगे। क्योंकि तुम्हारा नाम राम तुम्हारे गहन अचेतन में बसा है। अपना ही नाम लेकर अपने को कहो कि पाँच बजे मुझे जगा देना। और कोई तुम्हें जगा देगा। अगर तुम इस अध्याय को जारी रख सकते हो तो तुम पाओगे की ठीक पाँच बजे तुम्हें कोई पूकार रहा है। राम, जागों। यह तुम्हारा अचेतन पूकार रहा है।

यह विधि कहती है: ''अपने नाम की ध्वनि में प्रवेश करो, और उस ध्वनि के द्वारा सभी ध्वनियों में।''

तुम्हारा नाम सभी नामों के लिए द्वार बन सकता है। लेकिन ध्वनि में प्रवेश करो। पहले तुम जब राम-राम जपते हो तो वह शब्द भर है। लेकिन अगर जब सतत जारी रहता है तो उसका अर्थ कुछ और हो जाता है।

तुमने बाल्मीकी की कथा सुनी होगी। उन्हें यही राम मंत्र दिया गया था। लेकिन बाल्मीकी अनपढ़ था। सीधे-साधे बच्चे जैसा निर्दोष था। उन्होंने राम-राम जपना शुरू किया। लेकिन इतना अधिक जप किया कि वे भूल गये और राम की जगह मरा-मरा कहने लगे। वे राम-राम को इतनी तेजी से जपते थे कि वह मरा-मरा बन गया। और मरा-मरा कहकर ही वे पहूंच गये।

तुम भी अगर अपने भीतर अपने नाम का जाप तेजी से करो तो वह शब्द न रहकर ध्वनि में बदल जाता है। जब वह एक अर्थहीन ध्वनि हो जाती है। और तब राम और मरा में कोई भेद नहीं रहता। अब शब्द नहीं रहे, वे बस ध्वनि है। और ध्वनि असली चीज है।

तो अपने नाम की ध्वनि में प्रवेश करो, उसके अर्थ को भूल जाओ। सिर्फ ध्वनि में प्रवेश करो। अर्थ मन की चीज है, ध्वनि शरीर की चीज है। अर्थ सिर में रहता है। ध्वनि सारे शरीर में फैल जाती है। अर्थ को भूल ही जाओ। उसे एक अर्थहीन ध्वनि की तरह जपो। और इस ध्वनि के जरिए तुम सभी ध्वनियों में प्रवेश पा जाओगे। यह ध्वनि सब ध्वनियों के लिए द्वार बन जाएगी। सब ध्वनियों का अर्थ है जो सब है—सारा अस्तित्व।

भारतीय अंतस—अनुसंधान का यह एक बुनियादी सूत्र है कि अस्तित्व की मूलभूत इकाई ध्वनि है। विद्युत नहीं है। आधुनिक विज्ञान कहता है कि अस्तित्व की मूलभूत इकाई विद्युत है, ध्वनि नहीं है। लेकिन वे यह भी मानते है कि ध्वनि भी एक तरह की विद्युत है। भारतीय सदा कहते आए है कि विद्युत ध्वनि का ही एक रूप है। तुमने सुना होगा कि किसी विशेष राम के द्वारा आग पैदा की जा सकती है। यह संभव है। क्योंकि भारतीय धारणा यह है कि समस्त विद्युत का आधार ध्वनि है। इसलिए अगर ध्वनि को एक विशेष ढंग से छेड़ा जाये, किसी खास राग में गया जाए तो विद्युत या आग पैदा हो सकती है।

लंबे पुलों पर फौज की टुकड़ियों को लयवद्ध शैली में चलने की मनाही है, क्योंकि कई बार ऐसा हुआ है कि उनकी लयवद्ध कदम पड़ने के कारण पुल टूट गए है। ऐसा उनके भार के कारण नहीं , ध्वनि के कारण होता है। अगर सिपाही लयवद्ध शैली में चलेंगे तो उनके लयवद्ध कदमों की विशेष ध्वनि के कारण पुल टूट जाएगा। वे सिपाही यदि सामान्य ढंग सक निकले तो पुल को कुछ नहीं होगा।

पुराने यहूदी इतिहास में उल्लेख है कि जेरीको शहर ऐसी विशाल दीवारों से सुरक्षित था कि उन्हें बंदूकों से तोड़ना संभव नही था। लेकिन वे ही दीवारें एक विशेष ध्वनि के द्वारा तोड़ डाली गई। उन दीवारों के टूटने का राज ध्वनि में छिपा है। दीवारों के सामने अगर उस ध्वनि को पैदा किया जाए तो दीवारें टूट जाएंगी। तुमने अली बाबा की कहानी सुनी होगी, उसमे भी एक खास ध्वनि बोल कर चट्टान हटाई जाती थी।

वे प्रतीक है। वह सच हो या नहीं , एक बात निश्चित है कि अगर तुम किसी ध्वनि का इस भांति सतत अभ्यास करते रहो कि उसका अर्थ मिट जाये, तुम्हारा मन विलीन हो जाए, तो तुम्हारे ह्रदय पर पड़ी चट्टान हट जायेगी।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र,

भाग—2, प्रवचन-31

तंत्र सूत्र–विधि -48

काम संबंधि पहला सूत्र–

''काम-आलिंगन में आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो
विज्ञान भैरव तंत्र, विधि-48–ओशो

''काम-आलिंगन में आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो, और ऐसा करते हुए अंत में उसके अंगारे से बचो।''
कई कारणों से काम कृत्य गहन परितृप्ति बन सकता है और वह तुम्हें तुम्हारी अखंडता पर, स्वभाविक और प्रामाणिक जीवन पर वापस पहुंचा सकता है। उन कारणों को समझना होगा।

एक कारण यह है कि काम कृत्य समग्र कृत्य है। इसमें तुम अपने मन से बिलकुल अलग हो जाते हो। छूट जाते हो। यही कारण है कि कामवासना से इतना डर लगता है। तुम्हारा तादात्म्य मन के साथ है और काम अ-मन का कृत्य है। उस कृत्य में उतरते ही तुम बुद्धि-विहीन हो जाते हो। उसमे बुद्धि काम नहीं करती। उसमे तर्क की जगह नहीं है। कोई मानसिक प्रक्रिया नहीं है। और अगर मानसिक प्रक्रिया चलती है तो काम कृत्य सच्चा और प्रामाणिक नहीं हो सकता। तब आर्गाज़्म संभव नहीं है। गहन परितृप्ति संभव नहीं है। तब काम-कृत्य उथला हो जाता है। मानसिक कृत्य हो जाता है। ऐसा ही हो गया है। सारी दुनिया में कामवासना की इतनी दौड़ है, काम की इतनी खोज है, उसका कारण यह नहीं है कि दुनिया ज्यादा कामुक हो गई है। उसका कारण इतना ही हे कि तुम काम-कृत्य को उसकी समग्रता में नहीं भोग पाते हो। इसीलिए कामवासना की इतनी दौड़ है। यह दौड़ बताती है कि सच्चा काम खो गया है। और उसकी जगह नकली काम हावी हो गया है। सारा आधुनिक चित कामुक हो गया है। क्योंकि काम कृत्य ही खो गया है। काम कृत्य भी मानसिक कृत्य बन गया है। काम मन में चलता रहता है और तुम उसके संबंध में सोचते रहते हो।

मेरे पास अनेक लोग आते है और कहते है कि हम काम के संबंध में सोच-विचार करते है, पढ़ते है, चित्र देखते है। अश्लील चित्र देखते है। वही उनका कामानंद है, सेक्स का शिखर अनुभव है। लेकिन जब काम का असली क्षण आता है तो उन्हें अचानक पता चलता है कि उसमे उनकी रूचि नहीं है। यहां तक कि वे उसमे अपने को नापुंसग अनुभव करते है। सोच-विचार के क्षण में ही उन्हें काम उर्जा का एहसास होता है। लेकिन जब वे कृत्य में उतरना चाहते है तो उन्हें पता चलता है कि उसके

लिए उनके पास ऊर्जा नहीं है। तब उन्हें कामवासना का भी पता नहीं चलता है। उन्हें लगता है कि उनका शरीर मुर्दा हो गया है।

उन्हें क्या हो गया है?यही हो रहा है कि उनका काम-कृत्य भी मानसिक हो गया है। वे इसके बारे में सिर्फ सोच विचार कर सकते है। वे कुछ कर नहीं सकते। क्योंकि कृत्य में तो पूरे का पूरा जाना पड़ता है। और जब भी पूरे होकर कृत्य में संलग्न होने की बात उठती है। मन बेचैन हो जाता है। क्योंकि तब मन मालिक नहीं रह सकता, तब मन नियंत्रण नहीं कर सकता।

तंत्र काम-कृत्य को, संभोग को तुम्हें अखंड बनाने के लिए उपयोग में लाता है। लेकिन तब तुम्हें इसमे बहुत ध्यानपूर्वक उतरना होगा। तब तुम्हें काम के संबंध में वह सब भूल जाना होगा जो तुमने सुना है, पढ़ा है, जो समाज ने, संगठित धर्मों ने, धर्म गुरूओं ने तुम्हें सिखाया है। सब कुछ भूल जाओ। दिया है। और समग्रता से इसमे उतरो। भूल जाओ कि नियंत्रण करना है। नियंत्रण ही बाधा है। उचित है कि तुम उस पर नियंत्रण करने की बजाय अपने को उसके हाथों में छोड़ दो। तुम ही उसके बस में हो जाओ। संभोग में पागल की तरह जाओ। अ-मन की अवस्था पागलपन जैसी मालूम पड़ती है। शरीर ही बन जाओ। पशु ही बन जाओ। क्योंकि पशु पूर्ण है।

जैसा आधुनिक मनुष्य है। उसे पूर्ण बनाने की सबसे सरल संभावना केवल काम में है। सेक्स में है, क्योंकि काम तुम्हारे भीतर गहन जैविक केंद्र है। तुम उससे ही उत्पन्न हुए हो। तुम्हारी प्रत्येक कोशिका काम-कोशिका है। तुम्हारा समस्त शरीर काम-उर्जा की घटना है।

यह पहला सूत्र कहता है: ''काम-आलिंगन के आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो, और ऐसा करते हुए अंत में उसके अंगारे से बचो।''

इसी में सारा फर्क है, सारा भेद है। तुम्हारे काम-कृत्य, संभोग महज राहत का, अपने को तनाव-मुक्त करने का उपाय है। इसलिए जब तुम संभोग में उतरते हो तो तुम्हें बहुत जल्दी रहती है। तुम किसी तरह छुटकारा चाहते हो। छुटकारा यह कि जो ऊर्जा का अतिरेक तुम्हें पीडित किए है वि निकल जाए और तुम चैन अनुभव करो। लेकिन यह चैन एक तरह की दुर्बलता है। ऊर्जा की अधिकता तनाव पैदा करती है। उतैजना पैदा करती है। और तुम्हें लगता है कि उसे फेंकना जरूरी है। जब वह ऊर्जा बह जाती है तो तुम कमजोरी अनुभव करते हो। और तुम उसी कमजोरी को विश्राम मान लेते हो। क्योंकि ऊर्जा की बाढ़ समाप्त हो गई उतैजना जाती रही, इसलिए तुम्हें विश्राम मालूम पड़ता है।

लेकिन यह विश्राम नकारात्मक विश्राम है। अगर सिर्फ ऊर्जा को बाहर फेंककर तुम विश्राम प्राप्त करते हो तो यह विश्राम बहुत महंगा है। और तो भी यह सिर्फ शारीरिक विश्राम होगा। वह गहरा नहीं होगा। वह आध्यात्मिक नहीं होगा।

यह पहला सूत्र कहता है कि जल्द बाजी मत करो और अंत के लिए उतावले मत बनो, आरंभ में बने रहो। काम-कृत्य के दो भाग है: आरंभ और अंत। तुम आरंभ के साथ रहो। आरंभ का भाग ज्यादा विश्राम पूर्ण है। ज्यादा उष्ण है। लेकिन अंत पर पहुंचने की जल्दी मत करो। अंत को बिलकुल भूल जाओ।

तीन संभावनाएं है। दो प्रेमी प्रेम में तीन आकार, ज्यामितिक आकार निर्मित कर सकते है। शायद तुमने इसके बारे में पढ़ा भी होगा। या कोई पुरानी कीमिया, की तस्वीर भी देखो। जिसमें एक स्त्री और एक पुरूष तीन ज्यामितिक आकारों में नग्न खड़े है। एक आकार चतुर्भुज है, दूसरा त्रिभुज है, और तीसरा वर्तुल है। यक अल्केमी और तंत्र की भाषा में काम क्रोध का बहुत पुराना विश्लेषण है।

आमतौर से जब तुम संभोग में होते हो तो वहां दो नहीं, चार व्यक्ति होते है। वही है चतुर्भुज। उसमे चार कोने है, क्योंकि तुम दो हिस्सों में बंटे हो। तुम्हारा एक हिस्सा विचार करने वाला है और दूसरा हिस्सा भावुक हिस्सा है। वैसे ही तुम्हारा साथी भी दो हिस्सों में बंटा है। तुम चार व्यक्ति हो दो नहीं। चार व्यक्ति प्रेम कर रहे है। यह एक भीड़ है, और इसमें वस्तुत: प्रगाढ़ मिलन की संभावना नहीं है। इस मिलन के चार कोने है और मिलन झूठा है। वह मिलन जैसा मालूम होता है। लेकिन मिलन है नहीं। इसमें प्रगाढ़ मिलन की कोई संभावना नहीं है। क्योंकि तुम्हारा गहन भाग दबा पडा है। केवल दो सिर, दो विचार की प्रक्रियाएं मिल रही है। भाव की प्रक्रियाएं अनुपस्थित है। वे दबी छीपी है।

दूसरी कोटी काम मिलन त्रिभुज जैसा होगा। तुम दो हो, आधार के कोने और किसी क्षण अचानक तुम दोनों एक हो जाते हो— त्रिभुज के तीसरे कोने की तरह। किसी आकस्मिक क्षण में तुम्हारी दुई मिट जाती है। और तुम एक हो जाते है। यह मिलन चतुर्भुजी मिलन से बेहतर है। क्योंकि कम से कम एक क्षण के लिए ही सही , एकता सध जाती है। वह एकता तुम्हें स्वास्थ्य देती है। शक्ति देती है। तुम फिर युवा और जीवंत अनुभव करते हो।

लेकिन तीसरा मिलन सर्वश्रेष्ठ है। और यह तांत्रिक मिलन है। इसमें तुम एक वर्तुल हो जाते हो, इसमें कोने नहीं रहते। और यह मिलन क्षण भर के लिए नहीं है, वस्तुत: यह मिलन समयातित है। उसमें समय नहीं रहता। और यह मिलन तभी संभव है जब तुम स्खलन नहीं खोजते हो। अगर स्खलन खोजते हो तो फिर यह त्रिभुजीय मिलन हो जाएगा। क्योंकि स्खलन होते ही संपर्क का बिंदु मिलन का बिंदू खो जाता है।

आरंभ के साथ रहो, अंत की फिक्र मत करो। इस आरंभ में कैसे रहा जाए? इस संबंध में बहुत सी बातें ख्याल में लेने जैसी है। पहली बात कि काम कृत्य को कहीं जाने का, पहुंचने का माध्यम मत बनाओ। संभोग को साधन की तरह मत लो, वह आपने आप में साध्य है। उसका कहीं लक्ष्य नहीं है, वह साधन नहीं है। और दूसरी बात कि भविष्य की चिंता मत लो, वर्तमान में रहो। अगर तुम संभोग के आरंभिक भाग में वर्तमान में नहीं रह सकते, तब तुम कभी वर्तमान में नहीं रह सकते। क्योंकि काम कृत्य की प्रकृति ही ऐसी है। कि तुम वर्तमान में फेंक दिए जाते हो।

तो वर्तमान में रहो। दो शरीरों के मिलन का सुखा लो, दो आत्माओं के मिलने का आनंद लो। और एक दूसरे में खो जाओ। एक हो जाओ। भूल जाओ कि तुम्हें कहीं जाना है। वर्तमान क्षण में जीओं, जहां से कहीं जाना नहीं है। और एक दूसरे से मिलकर एक हो जाओ। उष्णता और प्रेम वह स्थिति बनाते है जिसमें दो व्यक्ति एक दूसरे में पिघलकर खो जाते है। यही कारण है कि यदि प्रेम न हो तो संभोग जल्दबाजी का काम हो जाता है। तब तुम दूसरे का उपयोग कर रहे हो। दूसरे में डूब नहीं रहे हो। प्रेम के साथ तुम दूसरे में डूब सकते हो।

आरंभ का यह एक दूसरे में डूब जाना अनेक अंतदृष्टियां प्रदान करता है। अगर तुम संभोग को समाप्त करने की जल्दी नहीं करते हो तो काम-कृत्य धीरे-धीरे कामुक कम और आध्यात्मिक ज्यादा हो जाता है। जननेंद्रियों भी एक दूसरे में विलीन हो जाती है। तब दो शरीर ऊर्जाओं के बीच एक गहन मौन मिलन घटित होता है। और तब तुम घंटों साथ रह सकते हो। यह सहवास समय के साथ-साथ गहराता जाता है। लेकिन सोच-विचार मत करो, वर्तमान क्षण में प्रगाढ़ रूप से विलीन होकर रहो। वही समाधि बन जाती है। और अगर तुम इसे जान सके इसे अनुभव कर सके, इसे उपलब्ध कर सके तो तुम्हारा कामुक चित अकामुक हो जाएगा। एक गहन ब्रहमचर्य उपलब्ध हो सकता है। काम से ब्रहमचर्य उपलब्ध हो सकता है।

यह वक्तव्य विरोधाभासी मालूम होता है। काम से ब्रहमचर्य उपलब्ध हो सकता है। क्योंकि हम सदा से सोचते आए है कि अगर किसी को ब्रहमचारी रहना है। तो उसे विपरीत यौन के सदस्य को नहीं देखना चाहिए। उससे नहीं मिलना चाहिए। उससे सर्वथा बचना चाहिए, दूर रहना चाहिए। लेकिन उस हालत में एक गलत किस्म का ब्रहमचर्य घटित होता है। जब चित विपरीत यौन के संबंध में सोचने में संबंध में सोचने में संलग्न हो जाता है। जितना ही तुम दूसरे से बचोगे उतना ही ज्यादा उसके संबंध में सोचने को विवश हो जाओगे। क्योंकि काम मनुष्य की बुनियादी आवश्यकता है, गहरी आवश्यकता है।

तंत्र कहता है कि बचने की, भागने की चेष्टा मत करो, बचना संभव नहीं है। अच्छा है कि प्रकृति को ही उसके अतिक्रमण का साधन बना लो। लड़ों मत प्रकृति के अतिक्रमण के लिए प्रकृति को स्वीकार करो।

अगर तुम्हारी प्रेमिका या तुम्हारी प्रेमी के साथ इस मिलन को अंत की फिक्र किए बिना लंबाया जा सके तो तुम आरंभ में ही बने रहे सकते हो। उतैजना ऊर्जा है और शिखर पर जाकर तुम उसे खो सकते हो। ऊर्जा के खोन से गिरावट आती है। कमजोरी पैदा होती है। तुम उसे विश्राम समझ सकते हो। लेकिन वह उर्जा का अभाव है।

तंत्र तुम्हें उच्चतर विश्राम का आयाम प्रदान करता है। प्रेमी और प्रेमिका एक दूसरे में विलीन होकर एक दूसरे को शक्ति प्रदान करते है। तब वे एक वर्तुल बन जाते है। और उनकी ऊर्जा वर्तुल में घूमने लगती है। वह दोनों एक दूसरे को जीवन ऊर्जा दे रहे है। नव जीवन दे रहे है। इसमे ऊर्जा का ह्रास नहीं होता है। वरन उसकी वृद्धि होती है। क्योंकि विपरीत यौन के साथ संपर्क के द्वारा तुम्हारा प्रत्येक कोश ऊर्जा से भर जाता है। उसे चुनौती मिलती हे।

यदि स्खलन न हो, यदि ऊर्जा को फेंका न जाए तो संभोग ध्यान बन जाता है। और तुम पूर्ण हो जाते हो। इसके द्वारा तुम्हारा विभाजित व्यक्तितत्व अविभाजित हो जाता है। अखंड हो जाता है। चित की सब रूग्णता इस विभाजन से पैदा होती है। और जब तुम जुड़ते हो, अखंड होते हो तो तुम फिर बच्चे हो जाते हो। निर्दोष हो जाते हो।

और एक बार अगर तुम इस निर्दोषता का उपलब्ध हो गए तो फिर तुम अपने समाज में उसकी जरूरत के अनुसार जैसा चाहो वैसा व्यवहार कर सकते हो। लेकिन तब तुम्हारा यह व्यवहार महज अभिनय होगा, तुम उससे ग्रस्त नहीं होगे। तब यह एक जरूरत है जिसे तुम पूरा कर रहे हो। तब तुम उसमे नहीं हो। तुम मात्र एक अभिनय कर रहे हो। तुम्हें झूठा चेहरा लगाना होगा। क्योंकि तुम एक झूठे संसार में रहते हो। अन्यथा संसार तुम्हें कुचल देगा, मार डालेगा।

हमने अनेक सच्चे चेहरों को मारा है। हमने जीसस को सूली पर चढ़ा दिया, क्योंकि वे सच्चे मनुष्य की तरह व्यवहार करने लगे थे। झूठा समाज इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता है। हमने सुकरात को जहर दे दिया। क्योंकि वह भी सच्चे मनुष्य की तरह पेश आने लगे थे। समाज जैसा चाहे वैसा करो, अपने लिए और दूसरों के लिए व्यर्थ की झंझट मत पैदा करो। लेकिन जब तुमने अपने सच्चे स्वरूप को जान लिया, उसकी अखंडता को पहचान लिया तो यह झूठा समाज तुम्हें फिर रूग्ण नहीं कर सकता, विक्षिप्त नहीं कर सकता।

''काम-आलिंगन के आरंभ में उसकी आरंभिक अग्नि पर अवधान दो, और ऐसा करते हुए अंत में उसके अंगारे से बचो।''

अगर स्खलन होता है तो ऊर्जा नष्ट होती है। और तब अग्नि नहीं बचती। तुम कुछ प्राप्त किए बिना ऊर्जा खो देते हो।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—3

प्रवचन-33

तंत्र सूत्र–विधि -49 (ओशो)

काम संबंधि दूसरा सूत्र–

''ऐसे काम-आलिंगन में जब तुम्हारी इंद्रियाँ पत्तों की भांति कांपने लगें

''ऐसे काम-आलिंगन में जब तुम्हारी इंद्रियाँ पत्तों की भांति कांपने लगें उस कंपन में प्रवेश करो।''
जब प्रेमिका या प्रेमी के साथ ऐसे आलिंगन में, ऐसे प्रगाढ़ मिलन में तुम्हारी इंद्रियाँ पत्तों की तरह कांपने लगें, उस कंपन में प्रवेश कर जाओ।

तुम भयभीत हो गए हो, संभोग में भी तुम अपने शरीर को अधिक हलचल नहीं करने देते हो। क्योंकि अगर शरीर को भरपूर गति करने दिया जाए तो पूरा शरीर इसमें संलग्न हो जाता है तुम उसे तभी नियंत्रण में रख सकते हो जब वह काम-कैंद्र तक ही सीमित रहता है। तब उस पर मन नियंत्रण कर सकता है। लेकिन जब वह पूरे शरीर में फैल जाता है तब तुम उसे नियंत्रण में नहीं रख सकते हो। तुम कांपने लगोगे। चीखने चिल्लाने लगोगे। और जब शरीर मालिक हो जाता है तो फिर तुम्हारा नियंत्रण नहीं रहता।
हम शारीरिक गति का दमन करते है। विशेषकर हम स्त्रियों को दुनियाभर में शारीरिक हलन-चलन करने से रोकते है। वे संभोग में लाश की तरह पड़ी रहती है। तुम उनके साथ जरूर कुछ कर रहे हो, लेकिन वे तुम्हारे साथ कुछ भी नहीं करती, वे निष्क्रिय सहभागी बनी रहती है। ऐसा क्यों होता है। क्यों सारी दुनिया में पुरूष स्त्रियों को इस तरह दबाते है।

कारण भय है। क्योंकि एक बार अगर स्त्री का शरीर पूरी तरह कामाविष्ट हो जाए तो पुरूष के लिए उसे संतुष्ट करना बहुत कठिन है। क्योंकि स्त्री एक शृंखला में, एक के बाद एक अनेक बार आर्गाज्म के शिखर को उपलब्ध हो सकती है। पुरूष वैसा नहीं कर सकता। पुरूष एक बार ही आर्गाज्म के शिखर अनुभव को छू सकता है। स्त्री अनेक बार छू सकती है। स्त्रियों के ऐसे अनुभव के अनेक विवरण मिले है। कोई भी स्त्री एक शृंखला में तीन-तीन बार शिखर-अनुभव को प्राप्त हो सकती है। लेकिन पुरूष एक बार ही हो सकता है। सच तो यह है कि पुरूष के शिखर अनुभव से स्त्री और-और शिखर अनुभव को उत्तेजित होती है। तैयार होती है। तब बात कठिन हो जाती है। फिर क्या किया जाए?

स्त्री को तुरंत दूसरे पुरूष की जरूरत पड़ जाती है। और सामूहिक कामाचार निषिद्ध है। सारी दुनियां में हमने एक विवाह वाले समाज बना रखे है। हमें लगता है कि स्त्री का दमन करना बेहतर है। फलत: अस्सी से नब्बे प्रतिशत स्त्रियां शिखर अनुभव से वंचित रह जाती है। वे बच्चों को जन्म दे सकती है। यह और बात है। वे पुरूष को तृप्त कर सकती है। यह भी और बात है।

लेकिन वे स्वयं कभी तृप्त नहीं हो पाती। अगर सारी दुनिया की स्त्रियां इतनी कड़वाहट से भरी है, दुःखी है, चिड़चिड़ी है, हताश अनुभव करती है। तो यह स्वाभाविक है। उनकी बुनियादी जरूरत पूरी नहीं होती।

कांपना अद्भुत है। क्योंकि जब संभोग करते हुए तुम कांपते हो तो तुम्हारी ऊर्जा पूरे शरीर में प्रवाहित होने लगती है। सारे शरीर में तरंगायित होने लगती है। तब तुम्हारे शरीर का अणु-अणु संभोग में संलग्न हो जाता है। प्रत्येक अणु जीवंत हो उठता है। क्योंकि तुम्हारा प्रत्येक अणु काम अणु है।

तुम्हारे जन्म में दो कास-अणु आपस में मिले और तुम्हारा जीवन निर्मित हुआ, तुम्हारा शरीर बना। वे दो काम अणु तुम्हारे शरीर में सर्वत्र छाए है। यद्यपि उनकी संख्या अनंत गुनी हो गई है। लेकिन तुम्हारी बुनियादी इकाई काम-अणु ही है। जब तुम्हारा समूचा शरीर कांपता है तो प्रेमी प्रेमिका के मिलन के साथ-साथ तुम्हारे शरीर के भीतर प्रत्येक पुरूष-अणु स्त्री अणु से मिलता है। वह कंपन यही बताता है। यह पशुवत मालूम पड़ेगा। लेकिन मनुष्य पशु है और पशु होने में कुछ गलती नहीं है।

यह दूसरा सूत्र कहता है: **''ऐसे काम-आलिंगन में जब तुम्हारी इंद्रियाँ पत्तों की भांति कांपने लगे।''**
मानो तूफान चल रहा है और वृक्ष कांप रहा है। उनकी जड़ें तक हिलने लगती है। पत्ता-पत्ता कांपने लगता है। यही हालत संभोग में होती है। कामवासना भारी तूफान है। तुम्हारे आर-पार एक भारी ऊर्जा प्रवाहित हो रही है। कंपो। तरंगायित होओ। अपने शरीर के अणु-अणु को नाचने दो। और इस नृत्य में दोनों के शरीरों को भाग लेना चाहिए। प्रेमिका को भी नृत्य में सम्मिलित करो। अणु-अणु को नाचने दो। तभी तुम दोनों का सच्चा मिलन होगा। और वह मिलन मानसिक नहीं होगा। वह जैविक ऊर्जा का मिलन होगा।

''उस कंपन में प्रवेश करो।''
और कांपते हुए उससे अलग-थलग मत रहो, मन का स्वभाव दर्शक बने रहने का है। इसलिए अलग मत रहो। कंपन ही बन जाओ। सब कुछ भूल जाओ और कंपन ही कंपन हो रहो। ऐसा नहीं कि तुम्हारा शरीर ही कांपता है। तुम पूरे के पूरे कांपते हो, तुम्हारा पूरा अस्तित्व कांपता है। तुम खुद कंपन ही बन जाते हो। तब दो शरीर और दो मन नहीं रह जाएंगे। आरंभ में दो कंपित ऊर्जाऐं है, और अंत में मात्र एक वर्तुल है। दो नहीं रहे।

इस वर्तुल में क्या घटित होगा। पहली बात तो उस समय तुम अस्तित्वगत सत्ता के अंश हो जाओगे। तुम एक सामाजिक चित नहीं रहोगे। अस्तित्वगत ऊर्जा बन जाओगे। तुम पूरी सृष्टि के अंग हो जाओगे। उस कंपन में तुम पूरे ब्रह्मांड के भाग बन जाओगे। वह क्षण महान सृजन का क्षण है। ठोस शरीरों की तरह तुम विलीन हो गए हो, तुम तरल होकर एक दूसरे में प्रवाहित हो गए हो। मन खो गया, विभाजन मिट गया, तुम एकता को प्राप्त हो गए।

यही अद्वैत है। और अगर तुम इस अद्वैत को अनुभव नहीं करते हो अद्वैत का सारा दर्शन शास्त्र व्यर्थ है। वह बस शब्द ही शब्द है। जब तुम इस अद्वैत अस्तित्वगत क्षण को जानोंगे तो ही तुम्हें उपनिषद समझ में आएँगे। और तभी तूम संतों को समझ पाओगे। कि जब वे जागतिक एकता की अखंडता की बात करते है तो उनका क्या मतलब है। तब तुम जगत से भिन्न नहीं होगे। उससे अजनबी नहीं होगे। तब पूरा अस्तित्व तुम्हारा घर बन जाता है। और इस भाव के साथ कि पूरा अस्तित्व मेरा घर है। सारी चिंताएं समाप्त हो जाती है। फिर कोई द्वंद्व न रहा, संघर्ष न रहा, संताप न रहा।

उसका ही लाओत्से ताओ कहते है, शंकर अद्वैत कहते है। तब तुम उसके लिए कोई अपना शब्द भी दे सकते हो। लेकिन प्रगाढ़ प्रेम आलिंगन में ही उसे सरलता से अनुभव किया जाता है। लेकिन जीवंत बनो, कांपो, कंपन ही बन जाओ।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—3

प्रवचन-33

तंत्र सूत्र–विधि -50 (ओशो)

काम संबंधि तीसरा सूत्र–

''काम-आलिंगन के बिना ऐसे मिलन का स्मरण करके भी रूपांतरण होगा।''

''काम-आलिंगन के बिना ऐसे मिलन का स्मरण करके भी रूपांतरण होगा।''

एक बार तुम इसे जान गए तो प्रेम पात्र की, साथी की जरूरत नहीं है। तब तुम कृत्य का स्मरण उसमे प्रवेश कर सकते हो। लेकिन पहले भाव का होना जरूरी है। अगर भाव से परिचित हो तो साथ के बिना भी तुम कृत्य में प्रवेश कर सकते हो।

यह थोड़ा कठिन है, लेकिन यह होता है। और जब तक यह नहीं होता, तुम पराधीन रहते हो। एक पराधीनता निर्मित हो जाती है। और यह प्रवेश अनेक कारणों से घटित होता है। अगर तुमने उसका अनुभव किया हो, अगर तुमने उस क्षण को जाना हो जब तुम नहीं थे, सिर्फ तरंगायित ऊर्जा एक होकर साथी के साथ वर्तुल बना रही थी। तो उस क्षण साथी भी नहीं रहता है, केवल तुम होते हो। वैसे ही उस क्षण तुम्हारे साथी के लिए तुम नहीं होते, वही होता है। वह एकता तुममें होती है। साथी नहीं रह जाता है। और यह भाव स्त्रियों के लिए सरल है। क्योंकि स्त्रियों आँख बंद करके ही संभोग में उतरती है।

इस विधि का प्रयोग करते समय आँख बंद रखना अच्छा है। तो ही वर्तुल का आंतरिक भाव एकता का आंतरिक भाव निर्मित हो सकता है। और फिर उसका स्मरण करो। आँख बंद कर लो और ऐसे लेट जाओ मानो तुम अपने साथी के साथ लेटे हो, स्मरण करो और भाव करो लो और ऐसे तुम्हारा शरीर कांपने लगेगा। तरंगायित होने लगेगा। उसे होने दो। यह बिलकुल भूल जाओ कि दूसरा नहीं है। ऐसे गति करो जैसे कि दूसरा उपस्थित है। शुरू में कल्पना से ही काम लेना होना। एक बार जाना गए कि यह कल्पना नहीं, यथार्थ है; तब दूसरा मौजूद है।

ऐसे गति करो जैसे कि तुम वस्तुत: संभोग में उतर रहे हो। वह सब कुछ करो जो तुम अपने प्रेम-पात्र के साथ करते; चीखो, डोलो, कांपो। शीध्र वर्तुल निर्मित हो जाएगा। और यह वर्तुल अद्भुत है। शीध्र ही तुम्हें अनुभव हो जायेगा। लेकिन यह वर्तुल पुरूष स्त्री से नहीं बना है। अगर तुम पुरूष हो तो सारा ब्रह्मांड स्त्री बन गया है। और अगर तुम स्त्री होता सारा ब्रह्मांड पुरूष

बन गया है। अब तुम खुद अस्तित्व के साथ प्रगाढ़ मिलन में हो और उसके लिए दूसरा द्वार की तरह अब नहीं है।
दूसरा मात्र द्वार है। किसी स्त्री के साथ संभोग करते हुए तुम दरअसल अस्तित्व के साथ संभोग में होते हो। सत्री मात्र द्वार है। पुरूष मात्र द्वार है। दूसरा संपूर्ण के लिए द्वार भर है। लेकिन तुम इतनी जल्दी में हो कि तुम्हें इसका एहसास नहीं होता। अगर तुम प्रगाढ़ मिलन में, सघन आलिंगन में घंटो रह सको तो दूसरा विस्मृत हो जाएगा। दूसरा समष्टि का विस्तार भर रह जाएगा।
अगर एक बार इस विधि को तुमने जान लिया तो अकेले भी तुम इसका प्रयोग कर सकते हो। और जब अकेले रहकर प्रयोग करोगे। तो वह तुम्हें एक नयी स्वतंत्रता प्रदान करेगा। वह तुम्हें दूसरे से स्वतंत्र कर देगा। वह वस्तुत: समूचा अस्तित्व दूसरा हो जाता है। तुम्हारी प्रेमिका या तुम्हारा प्रेमी हो जाता है। और फिर तो इस विधि का प्रयोग निरंतर किया जा सकता है। और तुम सतत अस्तित्व के साथ आलिंगन में संवाद में रह सकते हो।
और तब तुम इस विधि का प्रयोग दूसरे आयामों में भी कर सकते हो सुबह टहलते हुए इसका प्रयोग कर सकते हो। तब तुम हवा के साथ, उगते सूरज के साथ, चाँद-तारों के साथ, पेड़-पौधों के साथ। तुम लयबद्ध होने का अनुभव कर सकते हो। रात में तारों को देखते हुए इस विधि का प्रयोग कर सकते हो। चाँद को देखते हुए कर सकते हो। तुम पूरी सृष्टि के साथ काम-भोग में उतर सकते हो। अगर तुम्हें इसके घटित होने का राज पता चल जाए। निर्मित हो जाये, लेकिन मनुष्य के साथ प्रयोग आरंभ करना अच्छा है। कारण यह है कि मनुष्य तुम्हारे सबसे निकट है। वे तुम्हारे लिए जगत के निकटतम अंश है। लेकिन फिर उन्हें छोड़ा जा सकता है। उनके बिना भी चलेगा। तुम छलांग ले सकते हो और द्वार को बिलकुल भूल सकते हो।
''ऐसे मिलन का स्मरण करके भी रूपांतरण होगा।''
और तुम रूपांतरित हो जाओगे। तुम नए हो जाओगे।
तंत्र काम का उपयोग वाहन के रूप में करता है। वह ऊर्जा है, उसे वाहन या माध्यम बनाया जा सकता है। काम तुम्हें रूपांतरित कर सकता है। वह तुम्हें अतिक्रमण की अवस्था को , समाधि को उपलब्ध करा सकता है। लेकिन हम गलत ढंग से काम का उपयोग करते है। और गलत ढंग स्वाभाविक ढंग नहीं है। इस मामले में पशु भी हमसे बेहतर है। वे स्वभाविक ढंग से काम का उपयोग करते है। हमारे ढंग बड़े विकृत है। काम पाप है। यह बात निरंतर प्रचार से मनुष्य के मन में इतनी गहरी बैठ गई है कि अवरोध बन गई है। उसके चलते तुम कभी अपने को काम म उतरने की पूरी छूटी नहीं देते, तुम कभी उससे उन्मुक्त भाव से नहीं प्रवेश करते। तुम्हारा एक अंश सदा अलग खड़े होकर उसकी निंदा करता है।
और यह बात नयी पीढ़ी के लिए भी सच है। वे भला कहते हो कि हमारे लिए काम कोई समस्या नहीं है। और हम उसके दमित से ग्रस्त नहीं है। कि वह हमारे लिए टैबू नहीं रहा। लेकिन बात इतनी आसान नहीं है। तुम अपने अचेतन को इतनी आसानी से नहीं पोंछ सकते, वह सदियों में निर्मित हुआ है। मनुष्य का पूरा अतीत तुम्हारे साथ है। हो सकता है। कि तुम चेतना में काम की निंदा न करते होओ। तुम उसे पाप न भी कहते हो। लेकिन तुम्हारा अचेतन सतत उसकी निंदा में लगा है। तुम कभी समग्रता से काम कृत्य में नहीं होते। सदा ही कुछ अंश बाहर रह जाता है। और वही बाहर रह गया अंश विभाजन पैदा करता है, टूट पैदा करता है।
तंत्र कहता है, काम में समग्रता से प्रवेश करो। अपनी सभ्यता को, अपने धर्म को, संस्कृति और आदर्श को भूल जाओ। काम कृत्य में उतरो, पूर्णता से, समग्रता से उतरो। अपने किसी भी अंश को बाहर मत छोड़ो। सर्वथा निर्विचार हो जाओ। तभी यह बोध होता है। कि तुम किसी को साथ एक हो गए हो। और तब एक होने के इस भाव को साथी से पृथक किया जा सकता है। और उसे पूरे ब्रह्मांड के साथ जोड़ा जा सकता है। तब तुम वृक्ष के साथ, चाँद तारों के साथ, किसी भी चीज के साथ काम-क्रीड़ा में उतर सकते हो। एक बार तुम्हें वर्तुल बनाना आ जाए तो किसी भी चीज के साथ यह वर्तुल निर्मित किया जा सकता है।
तुम अपने भीतर भी एक वर्तुल का निर्माण कर सकते हो। क्योंकि मनुष्य दोनों है, पुरूष और स्त्री दोनों है। पुरूष के भीतर स्त्री है और स्त्री के भीतर पुरूष है। तुम दोनों हो, क्योंकि दोनों ने मिलकर तुम्हें निर्मित किया है। तुम्हारा निर्माण स्त्री और पुरूष दोनों के द्वारा हुआ है। इसलिए तुम्हारा आधा अंश सदा दूसरा है। तुम बाहरी सब कुछ को पूरी तरह भूल जाओ। और वह वर्तुल तुम्हारे भीतर निर्मित हो जाएगा।
इस वर्तुल के बनते ही तुम्हारा पुरूष तुम्हारी स्त्री के आलिंगन में होता है। और तुम्हारे भीतर की स्त्री भीतर के पुरूष के आलिंगन में होती है। और तब तुम अपने साथ ही आंतरिक काम-आलिंगन में होते हो। और इस वर्तुल के बनने पर ही सच्चा

ब्रह्मचर्य उपलब्ध होता है। अन्यथा सब ब्रह्मचर्य विकृति है और उससे समस्याएं ही समस्याएं जनम लेती है। और जब यह वर्तुल तुम्हारे भीतर निर्मित होता है तो तुम मुक्त हो जाते हो।

तंत्र यही कहता है: कामवासना गहनत्म बंधन है, लेकिन उसका उपयोग परम मुक्ति के लिए किया जा सकता है। उसे एक वाहन बनाया जा सकता है। जहर को औषधि बनाया जा सकता है। लेकिन उसके लिए विवेक जरूरी है।

तो किसी चीज की निंदा मत करो। वरन उसका उपयोग करो। किसी चीज के विरोध में मत होओ। उपाय निकालों कि उसका उपयोग किया जाए। उसको रूपांतरित किया जाए। तंत्र जीवन का गहन स्वीकार है, समग्र स्वीकार है। तंत्र अपने ढंग की सर्वथा अनूठी साधना है। अकेली साधना है। सभी देश और काल में तंत्र का यह अनूठापन अक्षुण्ण रहा है। और तंत्र कहता है, किसी चीज को भी मत फेंको, किसी चीज के भी विरोध में मत जाओ। किसी चीज के साथ संघर्ष मत करो, क्योंकि द्वंद्व में, संघर्ष में मनुष्य अपने प्रति ही विध्वंसात्मक हो जाता है।

सभी धर्म कामवासना के विरोध में है। वे उससे डरते है। क्योंकि कामवासना महान ऊर्जा है। उससे उतरते ही तुम नहीं बचते हो। उसका प्रवाह तुम्हें कहीं से कहीं बहा ले जाता है। यही भय का कारण है। इससे ही लोग अपने और इस प्रवाह के बीच एक दीवार, एक अवरोध खड़ा कर लेते है। ताकि दोनों बंट जाएं, ताकि यह प्रबल शक्ति तुम्हें अभिभूत न करे। ताकि तुम उसके मालिक बन रहो।

लेकिन तंत्र का कहना है—और केवल तंत्र का कहना है—कि यह मालिकीयत झूठी है। रूग्ण है। क्योंकि तुम सच में इस प्रवाह से पृथक नहीं हो सकते हो। वह प्रवाह तुम हो। सभी विभाजन झूठे होंगे। सभी विभाजन थोपे हुए होंगे। बुनियादी बात यह है कि विभाजन संभव ही नहीं है। क्योंकि तुम्हीं वह प्रवाह हो, तुम उसके अंग हो, उसकी एक लहर हो। संभव है कि तुम बर्फ की तरह जम गए हो। और इस तरह तुमने अपने को प्रवाह से अलग कर लिया है। लेकिन वह जमना, वह अलग होना मृतवत हो गई है। कोई भी आदमी वास्तव में जीवन नहीं है। तुम नदी में बहते हुए मुर्दों जैसे हो। पिघलो।

तंत्र कहता है: पिघलने चेष्टा करो। हिमखंड की तरह मत जीओं। पिघलो और नदी के साथ एक हो जाओ। नदी के साथ एक होकर, नदी में विलीन होकर बोधपूर्ण होओ और तब रूपांतरण घटित होता है। तब रूपांतरण है। संघर्ष से नहीं, बोध से रूपांतरण घटित होता है।

ये तीन विधियां बहुत वैज्ञानिक विधियां है। लेकिन तब काम या सेक्स वही नहीं रहता है जो तुम उसे समझते हो, तब वह कुछ और ही चीज है। तब सेक्स कोई क्षणिक राहत नहीं है, तब वह ऊर्जा को बाहर फेंकना नहीं है। तब इसका अंत नहीं आता, तब वह ध्यानपूर्ण वर्तुल बन जाता है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—3

प्रवचन-33

तंत्र सूत्र–विधि -51 (ओशो)

काम संबंधि चौथा सूत्र–

''बहुत समय बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है…..

''बहुत समय बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है, उस हर्ष में लीन होओ।''
उस हर्ष में प्रवेश करो और उसके साथ एक हो जाओ। किसी भी हर्ष से काम चलेगा। यह एक उदाहरण है।

''बहुत समय बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है।''

तुम्हें अचानक कोई मित्र मिल जाता है जिसे देखे हुए बहुत दिन, बहुत वर्ष हो गए है। और तुम अचानक हर्ष से, आह्लाद से भर जाते हो। लेकिन अगर तुम्हारा ध्यान मित्र पर है, हर्ष पर नहीं तो तुम चूक रहे हो। और यह हर्ष क्षणिक होगा। तुम्हारा सारा ध्यान मित्र पर केंद्रित होगा, तुम उससे बातचीत करने में मशगूल रहोगे। तुम पुरानी स्मृतियों को ताजा करने में लगे रहोगे। तब तुम इस हर्ष को चूक जाओगे। और हर्ष भी विदा हो जाएगा। इसलिए जब किसी मित्र से मिलना हो और अचानक तुम्हारे ह्रदय में हर्ष उठे तो उस हर्ष पर अपने को एकाग्र करो। उस हर्ष को महसूस करो। उसके साथ एक हो जाओ। और तब हर्ष से भरे हुए और बोधपूर्ण रहते हुए अपने मित्र को मिलो। मित्र को बस परिधि पर रहने दो और तुम अपने सुख के भाव के में केंद्रित हो जाओ।
अन्य अनेक स्थितियों में भी यह किया जा सकता है। सूरज उग रहा है और तुम अचानक अपने भीतर भी कुछ उगता हुआ अनुभव करते हो। तब सूरज को भूल जाओ, उसे परिधि पर ही रहने दो और तुम उठती हुई उर्जा के अपने भाव में केंद्रित हो जाओ। जब तुम उस पर ध्यान दोगे, वह भाव फैलने लगेगा। और वह भाव तुम्हारे सारे शरीर पर, तुम्हारे पूरे अस्तित्व पर फैल जाएगा। और बस दर्शन ही मत बने रहो। उसमे विलीन हो जाओ।

ऐसे क्षण बहुत थोड़े होते है, जब तुम हर्ष या आह्लाद अनुभव करते हो, सुख और आनंद से भरते हो। और तुम उन्हें भी चूक जाते हो। क्योंकि तुम विषय केंद्रित होते हो। जब भी प्रसन्नता आती है। सुख आता है, तुम समझते हो कि यह बाहर से आ रहा है।

किसी मित्र से मिलने हो, स्वभावत: लगता है कि सुख मित्र से आ रहा है। मित्र के मिलने से आ रहा है। लेकिन यह हकीकत नहीं है। सुख सदा तुम्हारे भीतर है। मित्र तो सिर्फ परिस्थिति निर्मित करता है। मित्र ने सुख को बाहर आने का अवसर दिया। और उसने तुम्हें उस सुख को देखने में हाथ बंटाया।

यह नियम सुख के लिए ही नहीं। सब चीजों के लिए है; क्रोध, शोक, संताप, सुख, सब पर लागू होता है। ऐसा ही है। दूसरे केवल परिस्थिति बनाते है जिसमे जो तुम्हारे भीतर छिपा है वह प्रकट हो जाता है। वे कारण नहीं है। वे तुम्हारे भीतर कुछ पैदा नहीं करते है। जो भी घटित हो रहा है वह तुम्हें घटित हो रहा है। वह सदा है। मित्र का मिलन सिर्फ अवसर बना, जिसमे अव्यक्त व्यक्त हो रहा है। अप्रकट हो गया।

जब भी यह सुख घटित हो, उसके आंतरिक भाव में स्थित रहो और तब जीवन में सभी चीजों के प्रति तुम्हारी दृष्टि भिन्न हो जाएगी। नकारात्मक भावों के साथ भी यह प्रयोग किया जा सकता है। जब क्रोध आए तो उस व्यक्ति की फिक्र मत करो जिसने क्रोध करवाया, उसे परिधि पर छोड़ दो और तुम क्रोध ही हो जाओ। क्रोध को उसकी समग्रता में अनुभव करो, उसे अपने भीतर पूरी तरह घटित होने दो।

उसे तर्क-संगत बनाने की चेष्टा मत करो। यह मत कहो कि इस व्यक्ति ने क्रोध करवाया। उस व्यक्ति की निंदा मत करो। वह तो निर्मित मात्र है। उसका उपकार मानों कि उसने तुम्हारे भीतर दमित भावों को प्रकट होने का मौका दिया। उसने तुम पर कहीं चोट की। और वहां से घाव छिपा पडा था। अब तुम्हें उस घाव का पता चल गया है। अब तुम वह घाव ही बन जाओ।

विधायक या नकारात्मक, किसी भी भाव के साथ प्रयोग करो और तुम में भारी परिवर्तन घटित होगा। अगर भाव नकारात्मक है तो उसके प्रति सजग होकर तुम उससे मुक्त हो जाओगे। और अगर भाव विधायक है तो तुम भाव ही बन

जाओगे। अगर यह सुख है तो तुम सुख बन जाओगे। लेकिन यह क्रोध विसर्जित हो जाएगा। और नकारात्मक और विधायक भावों का भेद भी यही है। अगर तुम किसी भाव के प्रति सजग होते हो और उससे वह भाव विसर्जित हो जाता है तो समझना कि वह नकारात्मक भाव है। और यदि किसी भाव के प्रति सजग होने से तुम वह भाव ही बन जाते हो और वह भाव फैलकर तुम्हारे तन-प्राण पर छा जाता है तो समझना कि वह विधायक भाव है। दोनों मामलों में बोध अलग-अलग ढंग से काम करता है। अगर कोई जहरीला भाव है तो बोध के द्वारा तुम उससे मुक्त हो सकते हो। और अगर भाव शुभ है, आनंदपूर्ण है, सुंदर है तो तुम उससे एक हो जाते हो। बोध उसे प्रगाढ़ कर देता है।

मेरे लिए यही कसौटी है। अगर कोई वृति बोध से सघन होती है तो वह शुभ है और अगर बोध से विसर्जित हो जाती है तो उसे अशुभ मानना चाहिए। जो चीज होश के साथ न जी सके वह पाप है और जो होश के साथ वृद्धि को प्राप्त हो वह पुण्य है। पुण्य और पाप सामाजिक धारणाएं नहीं है। वे आंतरिक उपलब्धियां है।

अपने बोध को जगाओं, उसका उपयोग करो। यह ऐसा ही है जैसे कि अंधकार है और तुम दीया जलाये हो। दीए के जलते ही अंधकार विदा हो जाएगा। प्रकाश के आने से अँधेरा नहीं हो जाता है। क्योंकि वस्तुत: अँधेरा नहीं था। अंधकार प्रकाश का आभाव है। वह प्रकाश की अनुपस्थिति था। लेकिन प्रकाश के आने से वहां मौजूद अनेक चीजें प्रकाशित भी हो जाएंगी। प्रकट हो जायेगी। प्रकाश के आने से ये अलमारियां, किताबें, दीवारें विलीन नहीं हो जाएंगी। अंधकार में वे छिपी थी, तुम उन्हें नहीं देख सकते थे। प्रकाश के आने से अंधकार विदा हो गया लेकिन उसके साथ ही जो यथार्थ था वह प्रकट हो गया। बोध के द्वारा जो भी अंधकार की तरह नकारात्मक है—धृणा, क्रोध, दुःख, हिंसा—वह विसर्जित हो जाएगा और उसके साथ ही प्रेम, हर्ष, आनंद जैसी विधायक चीजें पहली बार तुम पर प्रकट हो जाएंगी।

इसलिए ''बहुत समय के बाद किसी मित्र से मिलने पर जो हर्ष होता है, उस हर्ष में लीन होओ।''

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग—3

प्रवचन-33

तंत्र सूत्र–विधि -52

पांचवी तंत्र विधि–
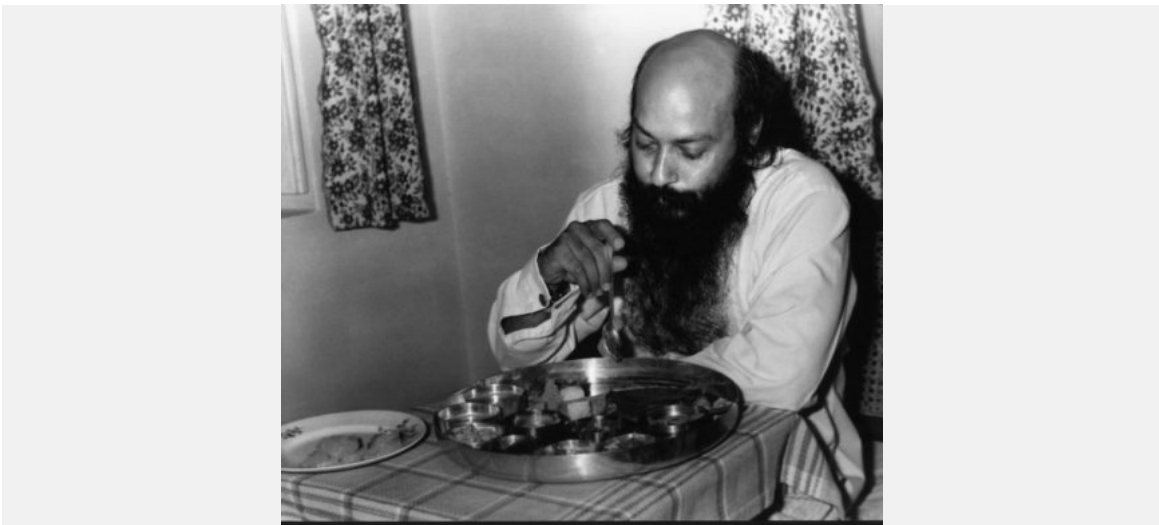
''भोजन करते हुए या पानी पीते हुए भोजन या पानी का स्वाद ही बन जाओ, और उससे भर जाओ।''
हम खाते रहते है, हम खाए बगैर नहीं रह सकते। लेकिन हम बहुत बेहोशी में भोजन करते है—यंत्रवत। और अगर स्वाद न लिया जाए तो तुम सिर्फ पेट को भर रहे हो।

तो धीरे-धीरे भोजन करो, स्वाद लेकिर करो और स्वाद के प्रति सजग रहो। और स्वाद के प्रति सजग होने के लिए धीरे-धीरे भोजन करना बहुत जरूरी है। तुम भोजन को बस निगलने मत जाओ। आहिस्ता-आहिस्ता उसका स्वाद लो और स्वाद ही बन जाओ। जब तुम मिठास अनुभव करो तो मिठास ही बन जाओ। और तब वह मिठास सिर्फ मुंह में नहीं, सिर्फ जीभ में नहीं, पूरे शरीर में अनुभव की जा सकती है। वह सचमुच पूरे शरीर में फैल जायेगी। तुम्हें लगेगा कि मिठास—या कोई भी चीज—लहर की तरह फैलती जा रही है। इसलिए तुम जो कुछ खाओ, उसे स्वाद लेकर खाओ और स्वाद ही बन जाओ। यहीं तंत्र दूसरी परंपराओं से सर्वथा भिन्न है। विपरीत मालूम पड़ता है। जैन अस्वाद की बात करते है। महात्मा गांधी ने तो अपने आश्रम में अस्वाद को एक नियम बना लिया था। नियम था कि खाओ स्वाद के लिए मत खाओ। स्वाद मत लो, स्वाद को भूल जाओ। वे कहते थे कि भोजन आवश्यक है, लेकिन यंत्रवत भोजन करो। स्वाद वासना है, स्वाद मत लो।

तत्र कहता है कि जितना स्वाद ले सको उतना स्वाद लो। ज्यादा से ज्यादा संवेदनशील बनो, जीवंत बनो। इतना ही नहीं कि संवेदनशील बनो, स्वाद ही बन जाओ। अस्वाद से तुम्हारी इंद्रियाँ मर जाएंगी। उनकी संवेदनशीलता जाती रहेगी। और संवेदनशीलता के मिटने से तुम अपने शरीर को, अपने भावों को अनुभव करने में असमर्थ हो जाओगे। और तब फिर तुम अपने सिर के केंद्रित होकर रह जाओगे। और सिर में केंद्रित होना विभाजित होना है।

तंत्र कहता है: अपने भीतर विभाजन मत पैदा करो। स्वाद लेना सुंदर है, संवेदनशील होना सुंदर है। और तुम जितने संवेदनशील होगे, उतने ही जीवंत होगे। और जितने तुम जीवंत होगे, उतना ही अधिक जीवन तुम्हारे अंतस में प्रविष्ट होगा। तुम अधिक खुलोगें। उन्मुक्त अनुभव करोगे।

तुम स्वाद लिए बिना कोई चीज खा सकते हो। यह कठिन नहीं है। तुम किसी को छुए बिना छू सकते हो। यह भी कठिन नहीं है। हम वही तो करते है, तुम किसी के साथ हाथ मिलाते हो और उसे स्पर्श नहीं करते। स्पर्श करने के लिए तुम्हें हाथ तक आना पड़ेगा। हाथ में उतरना पड़ेगा। स्पर्श करने के लिए तुम्हें तुम्हारी हथेली, तुम्हारी अगुलियां बन जाता पड़ेगा—मानो तुम, तुम्हारी आत्मा तुम्हारे हाथ में उतर आयी है। तभी तुम स्पर्श कर सकते हो, वैसे तुम किसी का हाथ में हाथ लेकिर भी उससे अलग रह सकते हो। तब तुम्हारा मुर्दा हाथ किसी के हाथ में होगा। वह छूता हुआ मालूम पड़ेगा। लेकिन वह छूता नहीं है।

हम स्पर्श करना भूल गए है। हम किसी को स्पर्श करने से डरते है। क्योंकि स्पर्श करना कामुकता का प्रतीक बन गया है। तुम किसी भीड़ में, बस या रेल में अनेक लोगों को छूते हुए खड़े हो सकते हो, लेकिन वास्तव में न तुम उन्हें छूते हो और न वे तुम्हें छूते है। सिर्फ शरीर एक दूसरे को स्पर्श कर रहा है। लेकिन तुम दूर-दूर हो। और तुम इस फर्क को समझ सकते हो। अगर तुम भीड़ में किसी को वास्तव में स्पर्श करो तो वह बुरा मान जाएगा। तुम्हारा शरीर बेशक छू सकता है। लेकिन तुम्हें उस शरीर में नहीं होना चाहिए। तुम्हें शरीर से अलग रहना चाहिए, मानो तुम शरीर में नहीं हो, मानो कोई मुर्दा शरीर स्पर्श कर रहा है।

यह संवेदनहीनता बुरी है। यह बुरी है, क्योंकि तुम अपने को जीवन से बचा रहे हो। तुम मृत्यु से इतने भयभीत हो और तुम मरे हुए हो। सच तो यह है कि तुम्हें भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि कोई भी मरने वाला नहीं है। तुम तो पहले से

ही मरे हुए हो। और तुम्हारे भयभीत होने का कारण भी यही है कि तुम कभी जीए ही नहीं। तुम जीवन से चूकते रहे और मृत्यु करीब आ रही है।

जो व्यक्ति जीवित है वह मृत्यु से नहीं डरेगा। क्योंकि वह जीवित है। जब तुम वास्तव में जीते हो तो मृत्यु का भय नहीं रहता। तब तुम मृत्यु को भी जी सकते हो। जब मृत्यु आएगी तो तुम इतने संवेदनशील होगे कि मृत्यु का भी आनंद लोगे मृत्यु एक महान अनुभव बनने वाली है। अगर तुम सचमुच जिंदा हो तो तुम मृत्यु को भी जी सकते हो। और तब मृत्यु-मृत्यु नहीं रहेगी। अगर तुम मृत्यु को भी जी सको। जब तुम अपने केंद्र को लौट रहे हो, जब तुम विलीन हो रहे हो, उस क्षण यदि तुम अपने मरते हुए शरीर के प्रति भी सजग रह सको, अगर तुम इसको भी जी सको—तो तुम अमृत हो गए।

''भोजन करते हुए या पानी पीते हुए भोजन या पाना का स्वाद ही बन जाओ। और उससे भर जाओ।''

पानी पीते हुए पानी का ठंडापन अनुभव करो। आंखे बंद कर लो, धीरे-धीरे पीनी पीओ और उसका स्वाद लो। पानी की शीतलता को महसूस करो और महसूस करे कि तुम शीतलता ही बन गए हो। जब तुम पानी पीते हो तो पानी की शीतलता तुममें प्रवेश करती है। तुम्हारे अंग बन जाती है। तुम्हारा मुंह शीतलता को छूता है। तुम्हारी जीभ उसे छूती है। और ऐसे वह तुम में प्रवेश हो जाती है। उसे तुम्हारे पूरे शरीर में प्रविष्ट होने दो। उसकी लहरों को फैलने दो और तुम अपने पूरे शरीर में वह शीतलता महसूस करोगे। इस भांति तुम्हारी संवेदनशीलता बढ़ेगी। विकसित होगी। और तुम ज्यादा जीवंत, ज्यादा भरे पूरे हो जाओगे।

हम हताश, रिक्त और खाली अनुभव करते है। और हम कहते है कि जीवन रिक्त है। लेकिन जीवन के रिक्त होने का कारण हम स्वयं है। हम जीवन को भरते ही नहीं है। हम उसे भरने नहीं देते है। हमने अपने चारों और एक कवच लगा रखा है—सुरक्षा कवच। हम वलनरेबल होने से, खुले रहने से डरते है। हम अपने को हर चीज से बचाकर रखते है। और तब हम कब्र बन जाते है। मृत लाशों।

तंत्र कहता है: जीवंत बनो, क्योंकि जीवन ही परमात्मा है। जीवन के अतिरिक्त कोई परमात्मा नहीं है। तुम जितने जीवंत होगे उतने ही परमात्मा होगे। और जब समग्रता जीवंत होगे तो तुम्हारे लिए कोई मृत्यु नहीं है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-3

प्रवचन—33

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—53 (ओशो)

आत्म-स्मरण की पहली विधि–
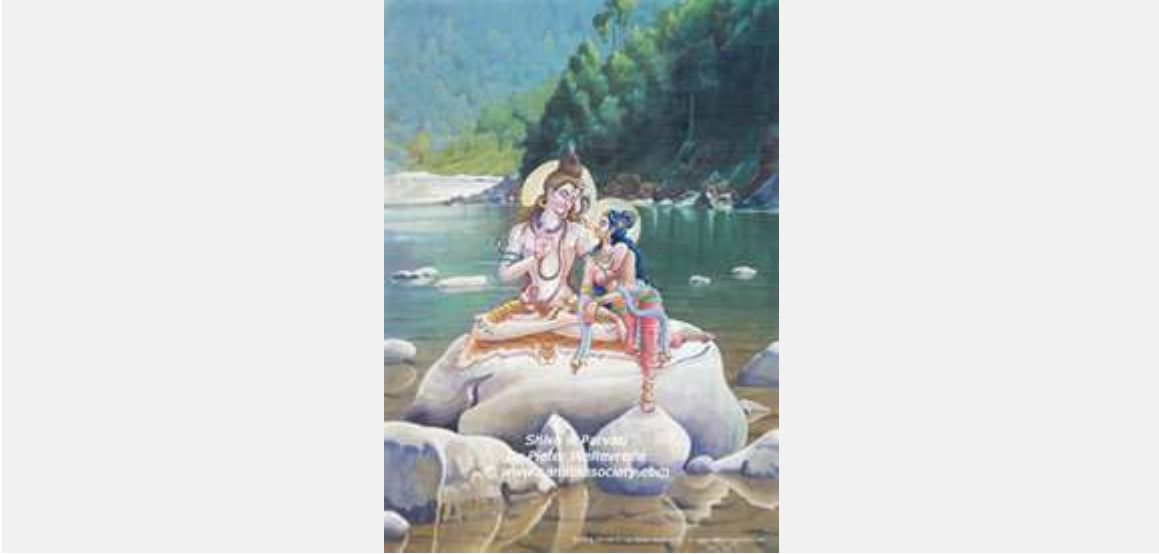
''हे कमलाक्षी, हे, सुभगे, गाते हुए, देखते हुए, स्वाद लेते हुए.....शिव

''हे कमलाक्षी, हे, सुभगे, गाते हुए, देखते हुए, स्वाद लेते हुए यह बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत आविर्भूत होता है।''
हम है, लेकिन हमें बोध नहीं है कि हम है। हमें आत्म-स्मरण नहीं है। तुम खा रहे हो, या तुम स्नान कर रहे हो, या टहल रहे हो। लेकिन टहलते हुए तुम्हें इका बोध नहीं है कि मैं हूं। सजग नहीं हो कि मैं हूं सब कुछ है, केवल तुम नहीं हो। झाड़ है, मकान है, चलते रास्ते है, सब कुछ है; तुम अपने चारों और की चीजों के प्रति सजग हो, लेकिन सिर्फ अपने होने के प्रति कि मैं हूं, सजग नहीं हो। लेकिन अगर तुम सारे संसार के प्रति भी सजग हो और अपने प्रति सजग नहीं हो तो सब सजगता झूठी है। क्यों? क्योंकि तुम्हारा मन सबको प्रतिबिंबित कर सकता है। लेकिन वह तुम्हें प्रतिबिंबित नहीं कर सकता। और अगर तुम्हें अपना बोध है तो तुम मन के पार चले गए।
तुम्हारा आत्म-स्मरण तुम्हारे मन के प्रतिबिंबित नहीं हो सकता, क्योंकि तुम मन के पीछे हो। मन उन्हीं चीजों को प्रतिबिंबित करता है जो उसके सामने होती है। तुम केवल दूसरों को देख सकते हो। तुम अपने को नहीं देख सकेत। तुम्हारी आंखें सबको देख सकती है। लेकिन अपने को नहीं देख सकती। अगर तुम अपने को देखना चाहो तो तुम्हें दर्पण की जरूरत होगी। दर्पण में ही तुम अपने आप को देख सकते हो। लेकिन उसके लिए तुम्हें दर्पण के सामने खड़ा होना होगा। तुम्हारा मन दर्पण है तो वह सारे संसार को प्रतिबिंबित कर सकता है। लेकिन तुम्हें प्रतिबिंबित नहीं कर सकता। क्योंकि तुम अपने सामने नहीं खड़े हो सकते। तुम सदा पीछे हो, दर्पण के पीछे हो।

यह विधि कहती है कि कुछ भी करते हुए—गाते हुए, देखते हुए, स्वाद लेते हुए—यह बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत को आविर्भूत कर लो। आपने भीतर उसे आविष्कृत कर लो जो सतत प्रवाह है, उर्जा है, जीवन है, शाश्वत है।

लेकिन हमें अपना बोध नहीं है। पश्चिम में गुरजिएफ ने आत्म-स्मरण का प्रयोग एक बुनियादी विधि के रूप में किया। वह आत्म-स्मरण इसी सूत्र से लिया गया है। और गुरजिएफ की सारी साधना इसी एक सूत्र पर आधारित है। सूत्र है कि तुम कुछ भी करते हुए अपने को स्मरण रखो।

यह बहुत कठिन होगा। यह सरल मालूम होता है। लेकिन तुम भूल-भूल जाओगे। तीन या चार सेकेंड के लिए भी तुम अपना स्मरण नहीं रख सकते। तुम्हें लगेगा कि मैं अपना स्मरण कर रहा हूं और अचानक तुम किसी दूसरे विचार में चले गए। अगर यह विचार भी उठा कि ठीक, मैं तो अपना स्मरण कर रहा हूं तो तुम चूक गये। क्योंकि यह विचार आत्म-स्मरण नहीं है। आत्म-स्मरण में कोई विचार नहीं होगा। तुम बिलकुल रिक्त और खाली होगे। और आत्म-स्मरण कोई मानसिक प्रक्रिया नहीं है। ऐसा नहीं है कि तुम कहते रहो कि हां, मैं हूं। यह कहते ही कि हां, मैं हूं, तुम चूक गये। मैं हूं, यह सोचना एक

मानसिक कृत्य है। यह अनुभव करो कि में हूं। इन शब्दों को नहीं अनुभव करना है। उसे शब्द मत दो, बस अनुभव करो कि मैं हूं, इन शब्दों को नहीं अनुभव करना है। और शब्द मत दो, बस अनुभव करो कि मैं हूं। सोचो मत, अनुभव करो।

प्रयोग करो। कठिन है, लेकिन अगर तुम प्रयोग में लगन से लगे रहे तो यह घटित होता है। टहलते हुए स्मरण रखो कि मैं हूं। अपने होने को महसूस करो। ऐसा किसी विचार या धारणा को नह लाना है। बस महसूस करना है। मैं तुम्हारा हाथ छूता हूं, या तुम्हारे सिर पर अपना हाथ रखता हूं, तो उसे शब्द मत दो। सिर्फ स्पर्श को अनुभव करो। और इस अनुभव में स्पर्श को ही नहीं, स्पर्शित को भी अनुभव करो। तब तुम्हारी चेतना के तीर में दो फलक होंगे।

तुम वृक्षों की छाया में टहल रहे हो; वृक्ष है, हवा है, उगता सूरज है, यह है तुम्हारे चारो और का संसार और तुम उसके प्रति सजग हो। घूमते हुए क्षण भर के लिए ठिठक जाओ और अचानक स्मरण करो कि मैं हूं, यह शब्द हिन अनुभूति, क्षण मात्र के लिए ही सही। तुम्हें सत्य की एक झलक दे जायेगी। क्षण भर के लिए तुम अपने आस्तित्व के केंद्र पर फेंक दिये जाते हो। तुम दर्पण के पीछे हो, तुम प्रतिबिंबों के जगत के पार चले गए हो। जब तुम अस्तित्वगत हो।

और यह प्रयोग तुम किसी भी समय कर सकते हो। इसके लिए न किसी खास जगह की जरूरत है और न किसी समय की। तुम यह नहीं कह सकते कि मेरे पास समय नहीं है। तुम भोजन करते हुए इसका प्रयोग कर सकते हो। तुम स्नान करते हुए इसका प्रयोग कर सकते हो। चलते हुए या बैठे हुए। किसी समय भी यह प्रयोग कर सकते हो। कोई भी काम करते हुए अचानक अपना स्मरण करो और फिर अपने होने की उस झलक को जारी रखने की चेष्टा करो।

यह कठिन होगा। एक क्षण लगेगा कि यह रहा और दूसरे क्षण यह विदा हो जाएगा। कोई विचार प्रवेश कर जायेगा। कोई प्रतिबिंब, कोई चित्र मन में तैर जायेगा। और तुम उसमें उलझ जाओगे। उससे दुःखी मत होना, निराश मत होना। ऐसा होता है, क्योंकि हम जन्मों-जन्मों से प्रतिबिंबों में उलझे रहे है। यह यंत्रवत प्रक्रिया बन गई है। अविलंब आप ही आप हम प्रतिबिंबों में उलझ जाते हो।

लेकिन अगर एक क्षण के लिए भी तुम्हें झलक मिल गई तो वह प्रारंभ के लिए काफी है। और वह क्यों काफी है?

क्योंकि तुम्हें कभी दो क्षण एक साथ नहीं मिलेंगे। सदा एक क्षण ही तुम्हारे हाथ में होता है। और अगर तुम्हें एक क्षण के लिए भी झलक मिल जाए तो तुम उसमें ज्यादा बने रह सकते हो। सिर्फ चेष्टा की जरूरत है। सतत चेष्टा की। तुम्हें एक क्षण ही तो दिया जाता है। दो क्षण तो कभी एक साथ नहीं आते। दो क्षणों की फिक्र मत करो। तुम्हें सदा एक क्षण ही मिलेगा। और अगर तुम्हें एक क्षण के लिए बोध हो सके तो जीवन भर के लिए बोध बना रह सकता है। अब सिर्फ प्रयत्न चाहिए। और यह प्रयोग सारा दिन चल सकता है। जब भी स्मरण आए, अपने को स्मरण करो।

''हे कमलाक्षी, हे सुभगे, गाते हुए, देखते हुए, स्वाद लेते हुए, यह बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत अविभूत होता है।

जब सूत्र कहता है कि ''बोध बना रहे कि मैं हूं'', तो तुम क्या करोगे? क्या तुम याद करोगे कि मेरा नाम रमा है, या जीसस है, या और कुछ है? क्या तुम स्मरण करोगे कि मैं फलां परिवार का हूं, फलां धर्म का हूं, फलां परंपरा का हूं। क्या तुम याद करोगे कि मैं अमुक देश का हूं? अमुक जाती का हूं, अमुक मत का हूं, क्या तुम स्मरण करोगे कि मैं कम्युनिस्ट हूं, या हिंदू हूं, ईसाई हूं? तुम क्या स्मरण करोगे?

यह सूत्र कहता है कि ''बोध बना रहे कि मैं हूं'' इतना ही कहता है कि मैं हूं। किसी नाम की जरूरत नहीं है। किसी देश कि जरूरत नहीं है। सिर्फ होने की जरूरत है। कि तुम हो। तो अपने से मत कहो कि तुम कौन हो। यह मत कहो कि मैं यह हूं, वह हूं। तुम हो, इस अस्तित्व को स्मरण करो।

लेकिन यह कठिन हो जाता है। क्योंकि हम कभी मात्र अस्तित्व को स्मरण नहीं करते हम सदा उसे स्मरण करते है जो एक लेबल है, पदवी है, नाम है, वह अस्तित्व नहीं है। जब भी तुम अपने बारे में सोचते हो, तुम अपने नाम, धर्म देश, इत्यादि की सोचते हो, तुम कभी इस मात्र आस्तित्व की नहीं सोचते हो कि मैं हूं।

तुम इसकी साधना कर सकते हो। अपनी कुर्सी में या किसी पेड़ के नीचे विश्राम पूर्वक बैठ जाओ, सब कुछ भूल जाओ और इस अपने होने पन को अनुभव करो। न ईसाई हो, न हिंदू हो, ने बौद्ध हो, न जैन हो, न अंग्रेज न, न जर्मन, बस तुम हो। इसकी प्रतीति भर हो, भव भर हो। और तब तुम्हें यह याद रखना आसान होगा कि मैं हूं, जो यह सूत्र कहता है।

''बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत आविर्भूत होता है।''

जिस क्षण तुम्हें बोध होता है कि मैं कौन हूं, उसी क्षण तुम्हें शाश्वत की धारा में फेंक दिया जाता है। जो असत्य है, उसकी मृत्यु निश्चित है। केवल सत्य शेष रह जाता है।

यही कारण है कि हम मृत्यु से इतना डरते है। क्योंकि झूठ को मिटना ही है। असत्य सदा नहीं रह सकता। और हम असत्य से बंधे है। असत्य से तादात्म्य किए बैठे है। तुममें जो हिंदू है। वह तो मरेगा—जो-जो नाम रूप है वह मरेगा।

लेकिन तुम्हारे भीतर जो सत्य है। जो अस्तित्वगत है। जो आधारभूत है, वह अमृत है। जब नाम रूप भूल जाते है और तुम्हारी दृष्टि भीतर क अनाम और अरूप पर पड़ती है, तब तुम शाश्वत में प्रवेश कर गए।

''बोध बना रहे कि मैं हूं, और शाश्वत आर्विर्भूत होता है।''
यह विधि अत्यंत कारगर विधियों में से एक है। और हजारों साल से सदगुरूओं ने इका प्रयोग किया है। बुद्ध इसे उपयोग में लाए, महावीर लाए, जीसस लाए। और आधुनिक जमाने में गुरूजिएफ ने इसका उपयोग किया। सभी विधियों में इस विधि की क्षमता सर्वाधिक है। इसका प्रयोग करो। यह समय लेगा, महीनों लग सकते है।

जब ओस्पेंस्की गुरूजिएफ के पास साधना कर रहा था तो उसे तीन म4हीने तक इस बात के लिए बहुत श्रम करना पडा कि आत्मा-स्मरण की एक झलक मिले। निरंतर तीन महीने तक ओस्पेंस्की एक एकांत घर में रहकर एक ही प्रयोग करता रहा—आत्म स्मरण का प्रयोग। तीस व्यक्तियों ने उस प्रयोग में हिस्सा लिया। और पहले ही सप्ताह के खत्म होते-होते सत्ताईस व्यक्ति भाग खड़े हुए। सिर्फ तीन बचे। सारा दिन वे और कोई काम नहीं करते थे। सिर्फ स्मरण करते थे कि मैं हूं। सत्ताईस लोगों को ऐसा लगा कि इस प्रयोग से हम पागल हो जाएंगे। हमारे विक्षिप्त होने के सिवाय कोई चारा नहीं है। और वे गायब हो गये। वे फिर कभी नहीं वापस आये। वे गुरूजिएफ से फिर कभी नहीं मिले।

हम जैसे है, असल में हम विक्षिप्त है। पागल ही है। जो नहीं जानते है कि हम क्या है, हम कौन है, वे पागल ही है। लेकिन हम इस विक्षिप्तता को ही स्वास्थ्य माने बैठे है। जब तुम पीछे लौटने की कोशिश करोगे। जब तुम सत्य से संपर्क साधोगे तो वह विक्षिप्तता जैसा पागलपन जैसा ही मालूम पड़ेगा। हम जैसे है, जो है उसकी पृष्टभूमि से सत्य ठीक विपरीत है। और अगर तुम जैसे हो उसको ही स्वास्थ्य मानते हो तो सत्य जरूर पागलपन मालूम पड़ेगा।

लेकिन तीन व्यक्ति प्रयोग में लगे रहे। उन तीन में पी. डी. ओस्पेंस्की भी एक था। वे तीन महीने तक प्रयोग में जुटे रहे। पहले महीने के बाद उन्हें मात्र होने की—कि मैं हूं, झलक मिलने लगी। दूसरे महीने के बाद मैं भी गिर गया और उन्हें मान होने पन की हूं—पन की झलक मिलने लगी। इस झलक में मात्र होना था। मैं भी नहीं था, क्योंकि मैं भी एक संज्ञा है। शुद्ध अस्तित्व न मैं है न तू, वह बस है। और तीसरे महीने के बाद हूं, पन का भाव भी विसर्जित हो गया। क्योंकि हूं-पन का भाव भी एक शब्द है। यह शब्द भी विलीन हो जाता है। तब तुम बस हो और तब तुम जानते हो कि तुम कौन हो।

इस घड़ी के आने के पूर्व तुम नहीं पूछ सकते कि मैं कौन हूं। या तुम सतत पूछते रह सकते हो कि मैं कौन हूं। और मन जो भी उत्तर देगा वह गलत होगा। अप्रासंगिक होगा। तुम पूछते जाओ कि मैं कौन हूं, मैं कौन हूं, एक क्षण आएगा जब तुम यह प्रश्न नहीं पूछ सकते। पहले सब उत्तर गिर जाते है और फिर खुद प्रश्न भी गिर जाता है। और खो जाता है। सब कुछ कि मैं कौन हूं। गिर जाता है, तुम जानते हो कि तुम कौन हो।

गुरजिएफ ने एक सिरे से इस विधि का प्रयोग किया: सिर्फ यह स्मरण रखना है कि मैं हूं। रमण महर्षि ने इसका प्रयोग दूसरे सिरे से किया। उन्होंने इस खोज को कि ''मैं कौन हूं।'' पूरा ध्यान बन दिया। उन्होंने इस खोज को कि ''मैं कौन हूं।'' और इसके उत्तर में मन जो भी कहे उस पर विश्वास मत करो। मन कहेगा कि क्या व्यर्थ का सवाल उठ रहे हो। मन कहेगा कि तुम यह हो, तुम वह हो, कि तुम मर्द हो। तुम औरत हो। तुम शिक्षित हो, अशिक्षित हो, कि गरीब हो, अमीर हो, मन उत्तर दिए जाता है। लेकिन तुम प्रश्न पूछते चले जाना। कोई भी उत्तर मत स्वीकार करना। क्योंकि मन के लिए दिए गये सभी उत्तर गलत होगे। वे उत्तर तुम्हारे झूठे हिस्से से आते है। वे शब्दों से आते है। वे शास्त्रों से आते है। वे तुम्हारे संस्कारों से आते है, वे समाज से आते है। सच तो यह है कि वे सब के सब दूसरों से आते है। तुम्हारे नहीं है। तुम पूछे ही चले जाओ। इस मैं कौन हूं, के तीन को गहरे से गहरे में उतरने दो।

एक क्षण आएगा जब कोई उत्तर नहीं आएगा। वह सम्यक क्षण होगा। अब तुम उत्तर के करीब हो। जब कोई उत्तर नहीं आता है, तुम उत्तर के करीब होते हो। क्योंकि अब मन मौन हो रहा है। अब तुम मन से बहुत दूर निकल गए हो। जब कोई उत्तर नहीं होगा और जब तुम्हारे चारो और एक शून्य निर्मित हो जाएगा तो तुम्हारा प्रश्न पूछना व्यर्थ मालूम होगा।

अचानक तुम्हारा प्रश्न भी गिर जायेगा। और प्रश्न के गिरते ही मन का आखिरी हिस्सा भी गिर गया। खो गया क्योंकि यह प्रश्न भी मन का ही था। वे उत्तर भी मन के थे और यह प्रश्न भी मन का था। दोनों विलीन हो गए। अब तुम बस हो।

इसे प्रयोग करो। अगर तुम लगन से लगे रहे तो पूरी संभावना है कि यह विधि तुम्हें सत्य की झलक दे जाए। और सत्य शाश्वत है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-3

प्रवचन—35

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—54 (ओशो)

आत्म-स्मरण की दूसरी विधि–

''जहां-जहां, जिस किसी कृत्य में संतोष मिलता हो, उसे वास्तविक करो।''– शिव

''जहां-जहां, जिस किसी कृत्य में संतोष मिलता हो, उसे वास्तविक करो।''
तुम्हें प्यास लगी है, तुम पानी पीते हो, उससे एक सूक्ष्म संतोष प्राप्त होता है। पानी को भूल जाओ। प्यास को भी भूल जाओ और जो सूक्ष्म संतोष अनुभव हो रहा है उसके साथ रहो। उस संतोष से भर जाओ, बस संतुष्ट अनुभव करो।

लेकिन मनुष्य का मन बहुत उपद्रवी है। वह केवल असंतोष और अतृप्ति अनुभव करता है। वह कभी संतोष को अनुभव नहीं करता। अगर तुम असंतुष्ट हो तो तुम उसे अनुभव करोगे और अंसतोष से भर जाओगे। जब तुम प्यासे हो तो तुम्हें प्यास अनुभव होती है। तुम्हारा गला सूखता है। और अगर प्यास और बढ़ती है तो वह पूरे शरीर में महसूस होने लगती है। और एक क्षण ऐसा भी आता है जब तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि मैं प्यासा हूं, तुम्हें लगता है कि मैं प्यास ही हो गया। अगर तुम किसी मरुस्थल में हो और पानी मिलने की कोई भी आशा नहीं हो तो तुम्हें ऐसा नहीं लगेगा कि मैं प्यासा हूं, तुम्हें लगेगा की मैं प्यास ही हो गया हूं।
असंतोष अनुभव में आता है, दुःख और संताप अनुभव में आते है। जब तुम दुःख में होते हो तो तुम दुःख ही बन जाते हो। यही कारण है कि पूरा जीवन नरक हो जाता है। तुमने कभी विधायक को नहीं अनुभव किया। तुमने सदा नकारात्मक को अनुभव किया है। जीवन वैसा दुःख नहीं है जैसा हमने उसे बना रखा है। दुःख हमारी महज व्याख्या है।

बुद्ध यहीं और अभी सुख में है। इसी जीवन में सुखी है। कृष्ण नाच रहे है और बांसुरी बजा रहे है। इसी जीवन में यही और अभी , जहां हम दुःख में है, वही कृष्ण नाच सकते है। जीवन न दुःख है और न जीवन आनंद है, दुःख और आनंद हमारी व्याख्याएं है। हमारी दृष्टियां है, हमारे रुझान है, हमारे देखने के ढंग है। यह तुम्हारे मन पर निर्भर है कि वह जीवन को किस तरह लेता है।

अपने ही जीवन को स्मरण करो। और विश्लेषण करो। क्या तुमने कभी संतोष के, परितृप्ति के, सुख के, आनंद के क्षणों का हिसाब रखा है? तुमने उसका कोई हिसाब नहीं रखा है। लेकिन तुमने अपने दुःख, पीड़ा और संताप का खूब हिसाब रख है। और तुम्हारे पास इसका बड़ा संग्रह है। तुम एक संग्रहीत नरक हो और यह तुम्हारा चुनाव है। कोई दूसरा तुम्हें इस नरक में नहीं ढकेल रहा है। यह तुम्हारा ही चुनाव है। मन नरक को पकड़ता है, उसका संग्रह करता है और फिर खुद नकार बन जाता है। और फिर वह दुस्चक्र हो जाता है। तुम्हारे चित में जितना नकार इकट्ठा होता है। तुम उतने ही नकारात्मक हो जाते हो।

और फिर नकार का संग्रह बढ़ता जाता है। समान-समान को आकर्षित करता है। और यह सिलसिला जन्मों-जन्मों से चल रहा है। तुम अपनी नकारात्मक दृष्टि के कारण सब कुछ चूक रहे हो।

यह विधि तुम्हें विधायक दृष्टि देती है। सामान्य मन और उसकी प्रक्रिया के बिलकुल विपरीत है यह विधि। जब भी संतोष मिलता हो, जिस किसी कृत्य में भी संतोष मिलता हो। उसे वास्तविक करो। उसे अनुभव करो, उसके साथ हो जाओ। यह संतोष किसी बड़े विधायक अस्तित्व की झलक बन सकता है।

यहां हर चीज महज एक खिड़की है। अगर तुम किसी दुःख के साथ तादात्म्य करते हो तो तुम दुःख की खिड़की से झांक रहे हो। और दुःख और संताप की खिड़की नरक की तरह ही खुलती है। और अगर तुम किसी संतोष के क्षण के साथ आनंद और समाधि के क्षण के साथ एकात्म होते हो तो तुम दूसरी खिड़की खोल रहे हो। अस्तित्व तो वही है, लेकिन तुम्हारी खिड़कियाँ अलग-अलग है।

''जहां-जहां, जिस किसी कृत्य में संतोष मिलता हो, उसे वास्तविक करो।''

बेशर्त, जहां कही भी संतोष मिले, उसे जीओं। तुम किसी मित्र से मिलते हो और तुम्हें प्रसन्नता अनुभव होती है। तुम्हें अपनी प्रेमिका या अपने प्रेमी से मिलकर सुख अनुभव होता है। इस अनुभव को वास्तविक बनाओ, उस क्षण सुख ही हो जाओ और उस सुख को द्वार बना लो। तब तुम्हारा मन बदलने लगेगा। और तब तुम सुख इकट्ठा करने लगोगे। तब तुम्हारा मन विधायक होने लगेगा। और वही जगह भिन्न दिखने लगेगी।

झेन संत बोकोजू ने कहा है कि जगत वही है, लेकिन कुछ भी वही नहीं है, क्योंकि मन वही नहीं है। सब कुछ वही रहता है, लेकिन कुछ भी वहीं नहीं रहता है, क्योंकि मैं बदल जाता हूं।

तुम संसार को बदलने की कोशिश करते हो, लेकिन तुम कछ भी करो। जगत वही का वही रहता है। क्योंकि तुम वही के वही रहते हो। तुम एक बड़ा घर बना लेते हो, तुम्हें एक बड़ी कार मिल जाती है। तुम्हें सुंदर पत्नी मिल जाती है। लेकिन उससे कुछ भी नहीं बदलेगा। बड़ा घर बड़ा नहीं होगा। सुंदर पत्नी सुंदर नहीं होगी। बड़ी कार भी छोटी ही रहेगी। क्योंकि तुम वहीं के वहीं हो। तुम्हारा मन, तुम्हारा रुझान, सब कुछ वहीं के वही है। तुम चीजें तो बदल लेते हो लेकिन अपने को नहीं बदलते। एक दुःखी आदमी झोपड़ी को छोड़कर महल में रहने लगता है, लेकिन अपने को नहीं बदलता, तो पहले वह झोंपड़े में दुःखी था, अब वह महल में दुःखी है। उसका दुःख महल का दुःख होगा, लेकिन वह दुःखी होगा।

तुम अपने साथ अपने दुःख लिए चल रहे हो और तुम जहां भी जाओगे अपने साथ रहोगे। इसलिए बुनियादी तौर पर बाहरी बदलाहट नहीं है। वह बदलाहट का आभास है। तुम्हें लगता है कि बदलाहट हुई, लेकिन दरअसल बदलाहट नहीं होती है। केवल एक बदलाहट, केवल एक क्रांति, केवल एक आमूल रूपांतरण संभव है और वह यह कि तुम्हारा चित नकारात्मक से विधायक हो जाए। अगर तुम्हारी दृष्टि दुःख से बंधी है तो तुम नरक में हो और अगर तुम्हारी दृष्टि सुख से जुड़ी है तो वही नरक स्वर्ग हो जाता है। इसे प्रयोग करो, यह तुम्हारे जीवन की गुणवता को रूपांतरित कर देगा।

लेकिन तुम तो गुणवता में नहीं, परिमाण में उत्सुक हो कि कैसे ज्यादा धन हो जाए। तुम धन का की गुणवता में नहीं, उसके परिणाम में, मात्रा में उत्सुक हो और एक अमीर आदमी दरिद्र हो सकता है। सच्चाई यही है, क्योंकि जो व्यक्ति जीजों और जीजों के परिमाण में उत्सुक है वह इस बात में सर्वथा अपरिचित है कि उसके भीतर एक और आयाम है, यह गुणवत्ता का आयाम है। और यह आयाम बदलता है जब तुम्हारा मन विधायक होता है।

तो कल सुबह से दिन भर यह स्मरण रहे: जब भी कुछ सुंदर और संतोषजनक हो, जब भी कुछ आनंददायक अनुभव आए, उसके प्रति बोधपूर्ण होओ। चौबीस घंटों में ऐसे अनेक क्षण आते है—सौंदर्य, संतोष और आनंद के क्षण—ऐसे अनेक क्षण आते है जब स्वर्ग तुम्हारे बिलकुल करीब होता है। लेकिन तुम नरक से इतने आसक्त हो, इतने बंधे हो कि उन क्षणों को चूकते चले जाते हो। सूरज उगता है, फूल खिलते है, पक्षी चहचहाते है, पेड़ों से होकर हवा गुजरती है। वैसे क्षण घटित हो रहे है। एक बच्चा निर्दोष आंखों से तुम्हें निहारता है। और तुम्हारे भी एक सूक्ष्म सुख का भाव उदित हो जाता है। या किसी की मुस्कुराहट तुम्हें आह्लाद से भर देती है।

अपने चारों ओ देखो ओ उसे खोजों जो आनंददायक है और उससे पूरित हो जाओ, भर जाओ। उसका स्वाद लो, उससे भर जाओ और उसे अपने पूरे प्राणों पर छा जाने दो, उसके साथ एक हो जाओ। उसकी सुगंध तुम्हारे साथ रहेगी। वह अनुभूति पूरे दिन तुम्हारे भीतर गूँजती रहेगी। और वह अनुगूँज तुम्हें ज्यादा विधायक होने में सहयोगी होगी।

यह प्रक्रिया भी और-और बढ़ती जाती है। यदि सुबह शुरू करो तो शाम तक तुम सितारों के प्रति, चाँद के प्रति, रात के प्रति, अंधेर के प्रति, ज्यादा खुले होगे। इसे एक चौबीस घंटे प्रयोग की तरह करो और देखो कि कैसा लगता है। और एक बार तुमने जान लिया कि विधायकता तुम्हें दूसरे ही जगत में ले जाती है। तो तुम उससे कभी अलग नहीं होगे। तब तुम्हारा पूरा दृष्टिकोण नकार से विधायक में बदल जाएगा। तब तुम संसार को एक भिन्न दृष्टि से, एक नयी दृष्टि से देखोगें।

मुझे एक कहानी याद आती है। बुद्ध का एक शिष्य अपने गुरु से विदा ले रहा है। शिष्य का नाम था पूर्ण काश्यप। उसने बुद्ध से पूछा कि मैं आपका संदेश लेकिर कहां जाऊं? बुद्ध ने कहा कि तुम खुद ही चुन लो। पूर्ण काश्यप ने कहा कि मैं बिहार के एक सुदूर हिस्से की तरफ जाऊँगा—उसका नाम सूखा था—उसका नाम सूख था—मैं सूखा प्रांत की तरफ जाऊँगा।

बुद्ध ने कहा कि अच्छा हो कि तुम अपना निर्णय बदल लो, तुम किसी और जगह जाओ क्योंकि सूखा प्रांत के लोग बड़े क्रूर, हिंसक, और दुष्ट है। और अब तक कोई व्यक्ति वहां उन्हें अहिंसा, प्रेम और करूणा का उपदेश सुनाने नहीं गया है। इसलिए अपना चुनाव बदल डालों। पर पूर्ण काश्यप ने कहा: मुझे जाने की आज्ञा दें, क्योंकि वहां कोई नहीं गया है और किसी को तो जाना ही चाहिए।

बुद्ध ने कहा की इससे पहले मैं तुम्हें वहां जाने की आज्ञा दूँ। मैं तुमसे तीन प्रश्न पूछना चाहता हूं। अगर उस प्रांत के लोग तुम्हारा अपमान करें तो तुम्हें कैसा लगेगा? पूर्ण काश्यप ने कहा: मैं समझूंगा कि वे बड़े अच्छे लोग है। जो केवल मेरा अपमान कर रहे है, वे मुझे मार भी सकते थे। बुद्ध ने कहा अब दूसरा प्रश्न, अगर वे लोग तुम्हें मारें-पीटें भी तो तुम्हें कैसा लगेगा? पूर्ण काश्यप ने कहा: मैं समझूंगा कि वे बड़े अच्छे लोग है। वे मेरी हत्या भी कर सकते थे। लेकिन वे सिर्फ मुझे पीट रहे है। बुद्ध ने कहा: अब तीसरा प्रश्न, अगर वे लोग तुम्हारी हत्या कर दें तो मरने के क्षण में तुम कैसा अनुभव करोगे। पूर्ण काश्यप ने कहा: '' मैं आपको और उन लोगों को धन्यवाद दूँगा। अगर वे मेरी हत्या कर देंगे तो वे मुझे उस जीवन से मुक्त कर देंगे जिसमें न जाने कितनी गलतियां हो सकती थी। वे मुझे मुक्त कर देंगे इसलिए मैं अनुगृहीत अनुभव करूंगा।

तो बुद्ध ने कहा: '' अब तुम कहीं भी जा सकते हो, सारा संसार तुम्हारे लिए स्वर्ग है। अब कोई समस्या नहीं है। सारा जगत तुम्हारे लिए स्वर्ग है। तुम कहीं भी जा सकते हो।

ऐसे चित के साथ जगत में कहीं भी कुछ भी गलत नहीं हो सकता। और तुम्हें चित के साथ कुछ भी सम्यक नहीं हो सकता। ठीक नहीं हो सकता। सकारात्मक चित के साथ सब कुछ गलत हो जाता है। इसलिए नहीं क्योंकि कुछ गलत है, बल्कि इसलिए क्योंकि नकारात्मक चित को गलत ही दिखाई देता है।

''जहां-जहां जिस किसी कृत्य में संतोष मिलता हो, उसे वास्तविक करो।''

यह एक बहुत ही नाजुक प्रक्रिया है, लेकिन बहुत मीठी भी है। और तुम इसमें जितनी गति करोगे, उतनी मीठी होती जाएगी। तुम एक नयी मिठास और सुगंध से भर जाओगे। बस सुंदर को खोजों, कुरूप भी सुंदर हो जाता है। खुशी क्षण की खोज करो, और तब एक क्षण आता है जब कोई दुःख नहीं रह जाता। आनंद की फ्रिक करो, और देर-अबेर दुःख तिरोहित हो जाता है। विधायक चित के लिए सब कुछ सुंदर है।

ओशो
विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-3

प्रवचन—35

विज्ञान भैरव तंत्र विधि—55 (ओशो)

आत्म-स्मरण की तीसरी विधि—
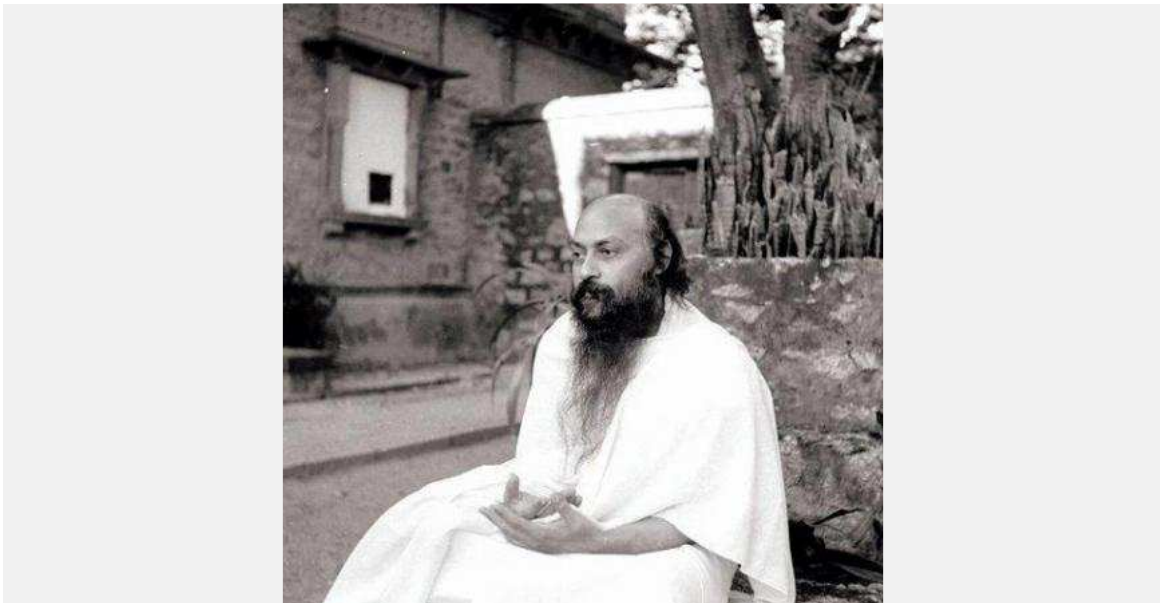
'जब नींद अभी नहीं आयी हो और बाह्य जागरण विदा हो गया हो............शिव

''जब नींद अभी नहीं आयी हो और बाह्य जागरण विदा हो गया हो, उस मध्य बिंदू पर बोधपूर्ण रहने से आत्मा प्रकाशित होती है।''

तुम्हारी चेतना में कई मोड़ आते है, मोड़ के बिंदु आते है। इन बिंदुओं पर तुम अन्य समयों की तुलना में अपने केंद्र के ज्यादा करीब होते हो। तुम कार चलाते समय गियर बदलते हो और गियर बदलते हुए तुम न्यूट्रल से गुजरते हो। यह न्यूट्रल गियर निकटतम है।

सुबह जब नींद विदा हो रही होती है और तुम जागने लगते हो। लेकिन अभी जागे नहीं हो, ठीक उस मध्य बिंदु पर तुम न्यूट्रल गियर में होते हो। यह एक बिंदु है जहां तुम न सोए हो और न जागे हो, ठीक मध्य में हो; तब तुम न्यूट्रल गियर में हो। नींद से जागरण में आते समय तुम्हारी चेतना की पूरी व्यवस्था बदल जाती है। वह एक व्यवस्था से दूसरी व्यवस्था में छलांग लेती है। और इन दोनों के बीच में कोई व्यवस्था नहीं होती, एक अंतराल होता है। इस अंतराल में तुम्हें अपनी आत्मा की एक झलक मिल सकती है।

वही बात फिर रात में घटित होती है जब तुम अपनी जाग्रत व्यवस्था से नींद की व्यवस्था में, चेतन से अचेतन में छलांग लेते हो। तब फिर एक क्षण के लिए कोई व्यवस्था नहीं होती है। तुम पर किसी व्यवस्था की पकड़ नहीं होती है। क्योंकि तब तुम एक से दूसरी व्यवस्था में छलांग लेते हो। इन दोनों के मध्य में अगर तुम सजग रह सकें, बोधपूर्ण रह सके, इन दोनों के मध्य में अगर तुम अपना स्मरण रख सके, तो तुम्हें अपने सच्चे स्वरूप की झलक मिल जाएगी।

तो इसके लिए क्या करें? नींद में उतरने के पहले विश्राम पूर्ण होओ और आंखे बंद कर लो। कमरे में अँधेरा कर लो। आंखे बंद कर लो। और बस प्रतीक्षा करो। नींद आ रही है। बस प्रतीक्ष करो। कुछ मत करो, बस प्रतीक्षा करो। तुम्हारा शरीर शिथिल हो रहा है। तुम्हारा शरीर भारी हो रहा है। बस शिथिलता को, भारीपन को महसूस करो। नींद की अपनी ही व्यवस्था है, वह काम करने लगती है। तुम्हारी जाग्रत चेतना विलीन हो रही है। इसे स्मरण रखो, क्योंकि वह क्षण बहुत सूक्ष्म है। वह क्षण परमाणु सा छोटा होता है। इस चूक गये तो चूक गये। वह कोई बड़ा अंतराल नहीं है। बहुत छोटा है। यह क्षण भर का अंतराल है, जिसमें तुम जागरण से नींद में प्रवेश कर जाते हो। तो बस पूरी सजगता से प्रतीक्षा करो। प्रतीक्षा किए जाओ।

इसमे थोड़ा समय लगेगा। कम से कम तीन महीने लगते है। तब एक दिन तुम्हें उस क्षण की झलक मिलेगी। जो ठीक बीच में है। तो जल्दी मत करो। यह अभी ही नहीं होगा, यह आज रात ही नहीं होगा। लेकिन तुम्हें शुरू करना है और महीनों प्रतीक्षा करनी है। साधारण: तीन महीने में किसी दिन यह घटित होगा। यह रोज ही घटित हो रहा है। लेकिन तुम्हारी सजगता और अंतराल का मिलन आयोजित नहीं किसा जा सकता। वह घटित हो ही रहा है। तुम प्रतीक्षा किए जाओ और किसी दिन वह घटित होगा। किसी दिन तुम्हें अचानक यह बोध होगा कि मैं न जागा हूं और न सोया हूं।

यह एक बहुत विचित्र अनुभव है, तुम उससे भयभीत भी हो सकते हो। अब तक तुमने दो ही अवस्थाएं जानी है। तुम्हें जागने का पता है, तुम्हें अपनी नींद का पता है। लेकिन तुम्हें यह नी पता है कि तुम्हारे भीतर एक तीसरा बिंदू भी है। जब तुम न जागे हो और सोये हो। इस बिंदू के प्रथम दर्शन पर तुम भयभीत भी हो सकते हो। आंतरिक भी हो सकते हो। भयभीत मत होओ। आतंरिक मत होओ। जो भी चीज इतनी नयी होगी। अनजानी होगी। वह जरूर भयभीत करेगी। क्योंकि यह क्षण जब तुम्हें इसका बार-बार अनुभव होगा। तुम्हें एक और एहसास देगा कि तुम न जीवित हो और नक मृत, कि तुम न यह हो और न वह। यह अतल खाई जैसा है।

नींद और जागरण की व्यवस्थाएं दो पहाड़ियों की भांति है, तुम एक से दूसरे पर छलांग लगाते हो। लेकिन यदि तुम उसके मध्य में ठहर जाओ तो तुम अतल खाई में गिर जाओगे। और इस खाई का कहीं अंत नहीं है। तुम गिरते जाओगे। गिरते ही जाओगे।

सूफियों ने इस विधि का उपयोग किया है। लेकिन जब वे किसी साधक को यक विधि देते है तो सुरक्षा के लिए वे साथ ही एक और विधि भी देते है। सूफी साधना में इस विधि के दिये जाने से पहले दूसरी विधि यह दि जाती है। कि तुम बंद आंखों से कल्पना करो, कि तुम अतल कुएं में गिर रहे हो। और गिरते ही जाओ। गिरते ही जाओ। सतत गिरते ही जाओ। यह कुआं अतल है, तुम कहीं रूक नहीं सकते। यह गिरना कही रूकने वाला नहीं है। तुम रूक सकते हो, आंखें खोलकर कह सकते हो। कि अब और नहीं। लेकिन यह गिरना अपने आप में कही रूकने वाला नहीं है। अगर तुम गिरते रहे तो कुआं अतल है। और वह और-और अंधकारपूर्ण होता जाएगा।

सूफी साधना में यह अभ्यास, अतल कुएं में गिरने का अभ्यास पहले कराया जाता है। और यह अच्छा है। उपयोगी है। अगर तुमने इसका अभया किया और अगर तुमने इसके सौंदर्य को समझा, इसकी शांति को जाना, अनुभव किया, तो तुम जितना चाहे गहरे कुएं में उतर सकते हो। ज्यादा शांत हो सकते हो। संसार बहुत पीछे छूट जायेगा। और तुम्हें लगेगा कि मैं बहुत दूर, बहुत दूर, निकल आया हूं। अंधकार के साथ शांति बढ़ती है। और क्योंकि नीचे गहरे में कहीं कोई तल नहीं है। इसलिए भय पकड़ सकता है। लेकिन तुम्हें मालूम है कि यह सिर्फ कल्पना है, इसलिए तुम इसे जारी रख सकते हो।

इस अभ्यास के द्वारा तुम इस विधि के लिए तैयार होते हो। और फिर जब तुम जागरण और नींद के अंतराल के कुएं में गिरते हो तो यह कल्पना नहीं है, यह यथार्थ है। और यह कुआं भी अतल है। अनंत है। इसीलिए बुद्ध ने इसे शून्य कहां है, उसका अंत नहीं है। और तुम एक बार इसे जान गए तो तुम भी अनंत हो गये।

''जब नींद अभी नहीं आयी हो और बाह्य जागरण विदा हो गया हो, उस मध्य बिंदु पर बोधपूर्ण रहने से आत्मा प्रकाशित होती है।''

तब तुम जानते हो कि मैं कौन हूं, मेरा सच्चा स्वभाव क्या है, मेरा प्रमाणिक अस्तित्व क्या है। जागते हुए झूठे हो। और यह तुम भली भांति जानते हो। जब तुम जागे हुए हो, तुम झूठे बने रहते हो। तुम उस समय मुस्कराते हो, जब कि आंसू बहाना ज्यादा सच होता है। तुम्हारे आंसू भी भरोसे योग्य नहीं है। वे भी दिखाऊ हो सकते है। नकली हो सकते है। होने चाहिए इसलिए हो सकते है। तुम्हारी मुस्कुराहट झूठी है। जो लोग चेहरे पढ़ना जानते है वे कह सकते है कि यह मुस्कुराहट रंग-रोगन से ज्यादा नहीं है। भीतर उसकी कोई जड़ें नहीं है। यह मुस्कुराहट बस तुम्हारे चेहरे पर है, होठो पर है। ऊपरी है। यह तुम्हारे प्राणों से नहीं उठी है। उपर से ओढ़ी गई है। यह थोपी गई है।

तुम जो कहते हो, जो भी करते हो, सब नकली है। यह जरूरी नहीं है कि तुम यह नकली व्यापार जान बूझकर करते हो। यह जरूरी नहीं है उसके प्रति तुम सर्वथा अंजान भी हो सकते हो। तुम अंजान हो। अन्यथा इस नकली मूढ़ता को सतत जारी रखना बहुत कठिन है। यह व्यापार स्वचालित है। यह झूठ चलता रहता है जब तुम जागे हुए हो और यह झूठ तब भी चलता रहा है जब तुम सोए हुए हो—लेकिन तब और ढंग से चलता है। तुम्हारे सपने प्रतीकात्मक है, सच नहीं। हैरानी की बात है कि तुम अपने सपनों मे भी सच्चे नहीं हो, तुम अपने सपनों में भी भयभीत हो। और तुम प्रतीक निर्मित करते हो।

अब मनोविश्लेषक तुम्हारे सपनों का विश्लेषण करता रहता है। यही उसका धंधा है। और यह एक भारी धंधा बन गया है। क्योंकि तुम खुद अपने सपनों का विश्लेषण नहीं कर सकते हो। सपने प्रतीकात्मक वे सच नहीं है। वे सिर्फ प्रतीकों के द्वारा कुछ कहते है। अगर तुम अपनी मां की हत्या करना चाहते हो, उसके छुटकारा चाहते हो। तो तुम सपने में उसकी हत्या नहीं करोगे। तुम उसकी जगह किसी ऐसे व्यक्ति की हत्या कर दोगे, जो देखने में तुम्हारी मां जैसा होगा। तुम अपनी चाचा या किसी और की हत्या कर दोगे। तुम अपने सपने में भी प्रमाणिक नहीं हो सकते। यह कारण है कि मनोविश्लेषण की जरूरत पड़ती हे। एक पेशेवर व्यक्ति की जरूरत पड़ती है। जो तुम्हारे सपनों की व्याख्या कर सके। लेकिन तुम सपने को भी एक ढंग से रख सकते हो कि मनोविश्लेषण भी धोखा खा जाए।

तुम्हारे सपने भी सर्वथा झूठे है। लेकिन अगर तुम जागते हुए सच्चे रह सको तो तुम्हारे सपने सच हो सकते है, तब वे प्रतीकात्मक नहीं होंगे। तब अगर तुम अपनी मां की हत्या करना चाहोगे तो सपने में तुम अपनी मां की ही हत्या करोगे। किसी और स्त्री की नहीं। और फिर व्याख्या करने वालों की जरूरत नहीं होगी। तुम्हें खुद पता होगा की तुम्हारे सपनों का अर्थ क्या है। लेकिन हम इतने झूठे है, धोखेबाज है, कि सपने के एकांत में भी संसार से, समाज से डरते है।

लेकिन यह सिखावन क्यों? गहरे में यह संभावना है कि प्रत्येक व्यक्ति अनिवार्यतः: अपनी मां का विरोध में चला जाए, क्योंकि मां ने तुम्हें सिर्फ जन्म ही नहीं दिया, उसने तुम्हें झूठ और नकली बनने के लिए मजबूर किया है। तुम जो भी हो, अपनी मां के बनाए हुए हो। अगर तुम एक नरक हो तो इसमें तुम्हारी मां का बड़ा हाथ है। सबसे बड़ा हाथ है। अगर तुम दुःख में हो तो उस दुःख में कहीं न कहीं तुम्हारी मां मौजूद है, क्योंकि मां ने तुम्हें जन्म दिया, उसने तुम्हें पाल-पोसकर बड़ा किया। या कहें कि उसने तुम्हें पाल-पोसकर नकली बनाया। उसने तुम्हें तुम्हारी प्रामाणिकता से हटा दिया। तुम्हारा पहला झूठ तुम्हारे और तुम्हारी मां के बीच घटित हुआ है।

जब बच्चे ने बोलना भी नहीं सीखा है, उसके पास भाषा भी नहीं है। तब भी वह झूठ बोल सकता है। देर अबेर वह जान जाता है कि उसके अनेक भाव मां को पसंद नहीं है। मां का चेहरा, उसकी आंखें, उसका व्यवहार, उसकी मुद्रा, सब बात देते है कि उसकी कुछ चीजें पसंद नहीं है। स्वीकृत नहीं है। और तब बच्चा दमन करने लगता है; उसे लगता है कि कुछ गलत है। अभी उसके पास भाषा नहीं है, उसका मन सक्रिय नहीं है। लेकिन उकसा सारा शरीर दमन करने लग जाता है। और फिर उसे पता चलता है कि कभी-कभी कोई बात उसकी मां के द्वारा सराही जाती है। और यह बच्चा मां पर निर्भर है, उसका जीवन ही मां पर निर्भर है। अगर मां उसे छोड़ दे तो वह नहीं जी सकता। उसका पूरा जीवन मां पर केंद्रित है।

इसलिए मां का सब कुछ—उसका व्यवहार, उसकी बात, उसका इशारा—बच्चे के लिए महत्वपूर्ण हो जाता है। अगर बच्चा मुस्कराता है और तब मां उसे प्रेम देती हे। लाड़-दुलार करती है। दूध पिलाती है। छाती से लगती है। तो समझो की बच्चा राजनीति सीखने लगा। वह तब भी मुस्कुराएगा जब उसके भी मुस्कुराहट नहीं होगी। क्योंकि अब वह जानता है कि ऐसा करके वह मां को खुश कर सकता है। अब वह झूठी मुस्कुराहट मुस्कुराएगा। अब एक झूठा व्यक्ति पैदा हो गया। अब एक राजनीतिज्ञ अस्तित्व में आया। अब वह जानता है कि कैसे झूठ हुआ जाए।

और यह सब वह अपनी मां के सत्संग से सीखता है। संसार में वह उसका पहला संबंध है। इसलिए जब उसे अपने दुखों का पता चलता है। अपने नरक का बोध होता है, उलझनें घेरेंगी, तब उसे यह भी पता चलेगा कि इस सब में कही न कहीं उसकी मां छिपी है। और पूरी संभावना यह है कि तुम अपनी मां के प्रति शत्रुता अनुभव करते हो। यही कारण है कि सभी संस्कृतियों में जोर दिया जाता है कि मां ही हत्या जघन्य पाप है। विचार में भी, सपने में भी, तुम मां की हत्या न कर सको।

ये दो तुम्हारे झूठे चेहरे है। एक चेहरा तुम्हारे जागरण में प्रकट होता है। और दूसरा तुम्हारी नींद में। इन दो झूठे चेहरों के बीच एक छोटा सा द्वार है, एक छोटा सा अंतराल है। इस अंतराल में तुम्हें अपने मौलिक चेहरे की झलक मिल सकती है—उस मौलिक चेहरे की जो तब था जब तुम मां से नहीं संबंधित हुए थे। और मां के जरिए समाज से नहीं जुड़े थे। जब तुम अपने साथ अकेले थे जब तुम थे—तुम यह वह नहीं थे। जब कोई विभाजन नहीं था। केवल सत्य था; कुछ असत्य नहीं था। इन दो व्यवस्थाओं के बीच तुम्हें अपनी उस सच्चे चेहरे की झलक मिल सकती है।

साधारणत: हम अपने सपनों की चिंता नहीं लेते है, हम सिर्फ जागते समय की चिंता लेते है। लेकिन मनोविश्लेषण तुम्हारे सपनों की ज्यादा चिंता लेते है। वह तुम्हारे जागरण की चिंता नहीं लेता है। क्योंकि वह समझता है कि जागे हुए तुम ज्यादा झूठे होते हो। तुम्हारे सपनों सक कुछ पकड़ा जा सकता है। जब तुम सोए होते हो तो कम सजग होते हो। तब तुम कुछ आरोपित नहीं करते, तब तुम तोड़ते-मरोड़ते नहीं। उस अवस्था में कुछ सत्य पकड़ा जा सकता है।

तुम जागते हुए ब्रह्मचारी हो सकते हो, साधु हो सकते हो। लेकिन तुमने अपनी कामवासना को दबा रखा है। वह दबी हुई कामवासना तुम्हारे स्वप्नों में अभिव्यक्त होगी; तुम्हारे सपने कामुक होंगे। ऐसा साधु खोजना कठिन है जो कामुक सपने ने देखता हो। यह असंभव है। तुम्हें कामुक सपनों के बिना अपराधी तो मिल जायेंगे। लेकिन ऐसा धार्मिक आदमी खोजना मुशिकल होगा। जो कामुक सपने न देखता हो। एक व्यभिचारी कामुक सपनों के बिना हो सकता है। क्योंकि तुम जागते हुए जिसे दबाओगें वह तुम्हारे सपनों में उभरकर आएगा। वह तुम्हारे सपनों को प्रभावित करेगा।

मनोचिकित्सक तुम्हारे जागरण की फिक्र नहीं करते है, क्योंकि वे जानते है कि वह बिलकुल झूठ है। अगर कुछ सच्चा, कुछ यथार्थ देखना हो तो वह केवल सपनों में देखा जा सकता है।

लेकिन तंत्र कहता है कि सपने भी उतने सच नहीं है। हालांकि जागरण की तुलना में वे ज्यादा सच है—यह पहेली सी मालूम पड़ती है। क्योंकि हम सपनों को असत्य मानते है—वे जागरण की घड़ियों की बजाय ज्यादा सच है। क्योंकि सपनों में तुम

अपने पहरे पर कम होते हो। नींद में सेंसर सोया रहता है। और दमित चीजें ऊपर आ सकती है। अपने को अभिव्यक्त कर सकती है। हां यह अभिव्यक्ति प्रतीकात्मक होगी; पर प्रतीकों को समझा जा सकता है।

सारी दुनियां में मनुष्य के प्रतीक समान है। जागते हुए तुम भिन्न भाषा बोल सकते हो। लेकिन सपने में तुम वही भाषा बोलते हो जो सारे लोग बोलते है। सारी दुनिया की स्वप्न भाषा एक है। अगर कामवासना दबाई गई है तो दुनियाभर में एक ही तरह का प्रतीक उसे अभिव्यक्त करेंगे। अगर भोजन की इच्छा को दबाया गया है, भूख को दमित किया गया है तो उसे भी सपने में सर्वत्र एक ही तरह के प्रतीक अभिव्यक्त करेंगे। स्वप्न—भाषा है।

लेकिन प्रतीकों के कारण ही स्वप्नों के साथ एक दूसरी कठिनाई है। फ्रायड उसका अर्थ एक ढंग से कर सकता है। जुंग उनका अर्थ दूसरे ढंग से कर सकता है। और एडलर उनका अर्थ और भी भिन्न ढंग से कर सकता है। अगर सौ मनोविश्लेषक तुम्हारा विश्लेषण करें तो वे सौ व्याख्याएं करेंगे। और तुम पहले से ज्यादा उलझन में पड़ जाओगे। एक ही चीज की सौ व्याख्याएं तुम्हें और भी भ्रांत कर देंगी।

तंत्र कहता है, तुम न जागते हुए सच हो और न सोते हुए सच हो, तुम इन दो अवस्थाओं के बीच में कहीं सच हो। इसलिए न जागरण की फिक्र तरो और नींद की और न स्वप्न की। सिर्फ अंतराल की फिक्र करो। उस अंतराल के प्रति जागों। एक से दूसरी अवस्था में गुजरते हुए इस अंतराल का दर्शन करो। और एक बार तुम जान जाते हो कि यह अंतराल कब आता है। तुम उसके मालिक हो जाते हो। तब तुम्हें कुंजी मिल गई, तुम किसी भी वक्त उस अंतराल को खोलकर उसमे प्रवेश कर सकते हो। तब होने का एक भिन्न आयाम, एक नया आयाम खुलता है।

ओशो

विज्ञान भैरव तंत्र, भाग-3

प्रवचन—35